nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 6 ◆ अंक - 6 ◆ नवंबर - दिसंबर 2021 ◆ मूल्य ₹40.00

- अपनी–सी महादेवी
- लोक दृष्टि की शास्त्रीयता
- राँची में सुभाष की यादें
- नेपथ्य का अभिनेता
- लोक कथाओं की अंतःप्रकृति
- असम के किसान आंदोलन

सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

"राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार"

- ❖ वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- ❖ जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- ❖ संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- ❖ संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- ❖ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- ❖ हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- ❖ समसामयिक जानकारी

सड़क दर्पण

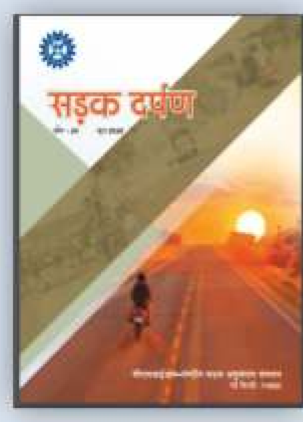

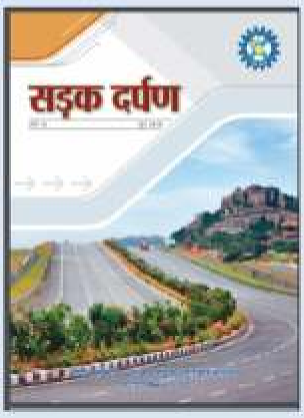

संपर्क -

संपादक, 'सड़क दर्पण'

राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली- 110025

दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165

ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/content/sadak-darpan-hindi-magazine**

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-6; अंक-6; नवंबर-दिसंबर, 2021

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
विरासत	**अपनी-सी महादेवी**—*यश मालवीय*	4
स्मृति	**लोक दृष्टि की शास्त्रीयता**—*डॉ. राजेश कुमार व्यास*	7
लेख	**एक बेहतरीन नस्रनिगार भी थे मौलाना अबुल कलाम आजाद**—*सीताराम गुप्ता*	10
स्मृति	**राँची में सुभाष की यादें**—*संजय कृष्ण*	13
आलेख	**संत सहजोबाई की गुरुभक्ति का समाजशास्त्रीय निहितार्थ**—*मधु सिंह*	16
कहानी	**नेपथ्य का अभिनेता**—*फणीश्वर नाथ रेणु*	19
आलेख	**लोक कथाओं की अंतःप्रकृति**—*सुधीर निगम*	22
अमृत महोत्सव	**असम के किसान आंदोलन**—*सौमित्रम्*	25
लेख	**इतना कठिन भी नहीं हिंदी को आगे बढ़ाने का रास्ता**—*हेमंत कुमार*	29
शब्द ज्ञान	**आओ भारतीय भाषाएँ सीखें**	32
यात्रा-वृत्तांत	**पाँच हजार साल पहले की सभ्यता : धोलावीरा**—*शंभूनाथ शुक्ल*	34
लेख	**ऊँटगाड़ी पर सवार पुस्तकें**—*अनुपमा तिवारी*	37
आलेख	**संगीत का विज्ञान**—*सुधीर पाण्डेय*	39
अमृत महोत्सव	**स्वाधीनता आंदोलन में असम का पहला शहीद : मणिराम देवान**—*डॉ. वाणी बरठाकुर 'विभा'*	41
पुस्तक समीक्षा		44
पुस्तकें मिलीं		60
साहित्यिक गतिविधियाँ		62

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अरूप गुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

विस्थापन का भाषाओं पर प्रभाव

'विस्थापन' बहुत कष्टदायक और त्रासदीपूर्ण शब्द है। विस्थापन चाहे व्यक्ति का हो अथवा भाषा का, उसका प्रभाव पीढ़ियों तक शूल की तरह चुभता रहता है। सामान्य व्यवहार में भी यदि किसी व्यक्ति को विस्थापित व्यक्ति कहें तो उसे लगता है कि वह मूल से उखड़ा हुआ प्राणी है। विस्थापन का सर्वाधिक प्रभाव भाषा पर पड़ता है। विस्थापित व्यक्ति नए परिवेश में धीरे-धीरे अपना सामंजस्य स्थापित कर लेता है, पर भाषा धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। हिब्रू भाषा इसका उदाहरण है।

इजराइल राष्ट्र के तुर्की साम्राज्य का अंग बनने के बाद वहाँ से यहूदियों का पलायन प्रारंभ हुआ। पलायन के परिणामस्वरूप वे विश्व के कई देशों में जाकर रहने लगे और अपना कारोबार आदि करने लगे, पर विस्थापन के कारण हिब्रू भाषा पारस्परिक व्यवहार से लुप्त होने लगी और एक समय वह आया कि हिब्रू भाषा लोक व्यवहार से समाप्तप्राय होकर केवल धार्मिक कर्मकांड की भाषा तक सीमित रह गई। ये तो पुनः 1948 में इजराइल राज्य स्थापित हो जाने के बाद की परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण हिब्रू भाषा पुनर्जीवित हुई और यहूदियों की बोलचाल और व्यवहार की भाषा बनी।

यद्यपि विद्वान भाषा को प्रायः संप्रेषण का माध्यम मानते हैं, तथापि भाषा इतनी मात्र नहीं है, वह व्यक्ति, जाति, क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान और असीमित ज्ञान का भंडार भी होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1912) ने ठीक ही कहा है कि "भाषा ही किसी जाति की सभ्यता को सबसे अलग झलकाती है, यही उसके हृदय के भीतरी पुर्जों का पता देती है।" इस दृष्टि से यदि विचार करें तो भाषा पर विचार और उसकी स्थिति पर चिंतन अति संवेदनशील और गंभीर प्रश्न है।

भाषाएँ अपने स्वाभाविक और सहज परिवेश में विकसित होती हैं। भाषा में उस क्षेत्र का जीवन, संस्कृति, मूल्य और व्यवहार व्यक्त होते हैं, पर जब विपरीत परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं तथा किन्हीं कारणों से उस क्षेत्र के लोग व्यापक संख्या में पलायन करने लगते हैं और विस्थापित होकर अन्य स्थानों पर बिखर जाते हैं तब भाषा का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है और वह विस्थापन का दंश झेलने लगती है।

किसी भाषा द्वारा दंश झेलने का अभिप्राय होता है—उस भाषा के सहज विकास का रुकना, भाषा में रचित साहित्य का नष्ट होना, भाषा में चिंतन-मनन और लेखन का क्रम अवरुद्ध होना या शिथिल पड़ जाना, पाठकों की संख्या का घटते जाना, नए स्थान और परिवेश में प्रचलित भाषा के वर्चस्व के कारण विस्थापित भाषा का सिकुड़ना अथवा धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर हो जाना और अंततः समाप्ति की ओर बढ़ना। इस दृष्टि से यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार, प्रचलन से बाहर हो जाने के कारण असम राज्य की देवरी, पिसिंग, कछारी, बेइटे, तिवा और कोच राजवंशी भाषाएँ संकटग्रस्त हैं। इनके बोलने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। ये भाषाएँ समाप्ति की ओर हैं। इसी प्रकार बोडो, कार्बी, डिमासा, विष्णुप्रिया, मणिपुरी और कोकबोरोक भाषाओं के जानकार लगातार कम होते जा रहे हैं। (राष्ट्रभाषा, सितंबर 2019, पृष्ठ 19) प्रचलन से बाहर होने के कारण ही प्राचीन भारतीय भाषाएँ, जैसे—पाली, प्राकृत, अपभ्रंश समाप्त हो गई। अंडमान-निकोबार में 2009 में 'कोरा' भाषा तथा 2010 में 'बो' भाषा समाप्त हो गई, क्योंकि उन्हें बोलने वाला अब कोई नहीं है। संयुक्त राष्ट्र के आँकड़ों के अनुसार, भारत में 196, अमेरिका में 192 तथा इंडोनेशिया में 147 भाषाएँ समाप्ति की कगार पर हैं। (फाइन टाइम्स, 21 फरवरी, 2011, भोपाल) वस्तुतः जिस भाषा का प्रयोग लोग मातृभाषा के रूप में करना बंद कर देते हैं, वह भाषा धीरे-धीरे विलुप्तता के निकट पहुँच जाती है। ऐसा होता है प्रायः वर्चस्व वाली भाषाओं के प्रभाव के कारण। महानगरों में अथवा अन्य स्थानों पर भी रहने वाले अल्पसंख्यक भाषा समूह के लोगों के साथ भी ऐसा होता है।

भारत का विभाजन बहुत बड़ी त्रासदी थी। इसका प्रभाव देश के करोड़ों लोगों के साथ भारतीय भाषाओं पर भी गहराई से पड़ा। विभाजन के कारण करोड़ों लोगों का विस्थापन हुआ। लोगों के साथ ही भाषाओं का भी विस्थापन हुआ। इसका सर्वाधिक

प्रभाव सिंधी, पंजाबी, असमिया तथा अन्य भाषाओं पर पड़ा। विभाजन के परिणामस्वरूप विस्थापित लोग भारत के कई भागों में बस गए। यह बसावट एक ही स्थान पर नहीं, अपितु बिखरी हुई थी। इसका प्रभाव कालांतर में उनकी भाषाओं पर पड़ा, बल्कि ऐसे में विस्थापित भाषाएँ सिकुड़ने लगीं। धीरे-धीरे वे घर-परिवार में भी बोलचाल में उपेक्षित होने लगीं। अंतरराष्ट्रीय स्तर की पत्रिका 'साइंस' में प्रकाशित एक लेख में कहा गया है कि जब छोटे समूह इधर-उधर हो जाते हैं तो उनकी भाषा समाप्त हो जाती है। (हितवाद, भोपाल 16 अप्रैल, 2011) ऐसा ही भारत में आए विस्थापितों की भाषा के साथ हो रहा है। ये भाषाएँ पूर्णतः समाप्त तो नहीं हुई हैं, तथापि वे क्रमशः सिकुड़ रही हैं और प्रचलन से अलग हो रही हैं। यह स्थिति निश्चित रूप से चिंताजनक है।

विस्थापन ने सभी भाषाओं और उनकी रचनाधर्मिता को प्रभावित किया है। क्षेत्र की प्रमुख भाषा के वर्चस्व, भूगोल, पर्यावरण और सांस्कृतिक परिवेश ने विस्थापित भाषा को प्रभावित ही नहीं किया, अपितु उन्हें धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर कर दिया। इसे हम न चाहते हुए भी 'प्रोसेस ऑफ डिसलोकेशन' अर्थात 'स्थान से अलग कर देने की प्रक्रिया' कह सकते हैं। यह प्रक्रिया चार प्रकार से होती है—एक, विद्यालयों में शिक्षण का माध्यम क्षेत्रीय भाषा का होना; दो, वाणिज्य, व्यवसाय और उद्योग में क्षेत्रीय भाषा का होना; तीन, प्रशासन और न्यायपालिका की भाषा क्षेत्रीय होना; चार, समाज, बाजार और पारस्परिक वार्ता में संप्रेषण की भाषा क्षेत्रीय होना। इन कारणों से विस्थापित लोगों की भाषा दैनंदिन उपयोग में कम होने लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि अपनी उपयोगिता खोते जाने के कारण इनका अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन कम होने लगता है। नए साहित्य का सृजन बंद हो जाता है। विभाजन का भाषाओं पर एक परिणाम और देखने में आता है। विभाजन के बाद कई दशकों तक जो परिवेश विस्थापन के परिणामस्वरूप विकसित होता है, उसके कारण प्रत्येक भाषा में विभाजन की त्रासदी और उसका दर्द लेखन का केंद्रबिंदु बन जाता है। यह स्थिति केवल लेखन में ही नहीं, अपितु कला और चलचित्रों में भी देखने को मिलती है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यदि हम देखें तो ऐसा नहीं है कि देशों के विभाजन ने सदैव भाषाओं पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। कोरिया, वियतनाम, जर्मनी के विभाजन को हम इस रूप में ले सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि उन देशों में भी भाषा में लेखन की दिशा और दशा अवश्य बदली है। वियतनाम और कोरिया के विभाजन के बाद भाषा के विस्थापन का प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ, क्योंकि दोनों ओर भाषा एक ही थी। अलबत्ता लेखन में विभाजन, साम्यवाद अमेरिकी प्रभाव, युद्ध, राष्ट्रीय और मानवीय रिश्ते प्रमुख रहे। दूसरी ओर सोवियत संघ के विघटन के बाद जिन 17 राज्यों ने अपने आप को स्वतंत्र पाया, उनकी भाषाओं के लेखन में मातृभूमि और उसका विचार प्रमुख रहा। उदाहरण के लिए, यूक्रेन के शिक्षाविद् वसीली अलेक्साद्रोविच सुखोम्लीन्स्की ने मातृभाषा और मातृभूमि को 'शिक्षा के देवता' के रूप में प्रस्थापित किया है। (बाल हृदय की गहराइयाँ, पृ.सं. 253)

जहाँ तक भाषा और सरकार की नीतियों का प्रश्न है, सरकार के संवैधानिक दायित्वों का उल्लेख भारत के संविधान में किया गया है और भारत की राज्य सरकारें उससे बँधी हुई हैं। संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 में सरकार की भाषा नीति का उल्लेख है। अनुच्छेद 29 स्पष्ट करता है कि "भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।" संघीय सरकार सहित सभी सरकारें संविधान की इस व्यवस्था के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हैं।

मुख्य प्रश्न सरकारों द्वारा भाषा के संबंध में संवैधानिक व्यवस्थाओं के पालन करने का ही नहीं है। सरकारों ने अपने-अपने स्तर पर यथासंभव यह सब किया है। प्रश्न है कि हम भाषा के प्रति कितने संवेदनशील अथवा आग्रही हैं? उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश सरकार ने माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू और मराठी को स्वीकार किया है। मध्य प्रदेश में मराठी भाषा-भाषी पर्याप्त होते हुए भी मराठी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या कम होती जा रही है। इसी प्रकार उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में सिंधी, पंजाबी, मराठी आदि 15 भाषाओं का विकल्प दिया गया है, पर उन भाषाओं के साथ 12वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले छात्रों की संख्या दहाई से ज्यादा नहीं है। कारण स्पष्ट है, जिन भाषाओं का प्रयोग शिक्षा, प्रशासन, व्यापार, उद्योग और समाज के बहुत बड़े वर्ग के बीच संप्रेषण के रूप में नहीं होता, वे भाषाएँ सरकारी संरक्षण के बाद भी लंबे समय तक प्रचलन में नहीं रह पातीं।

डेविड क्रिस्टल का कहना है कि "एक शब्द की मृत्यु एक व्यक्ति की मृत्यु के बराबर है।" यदि ऐसा है तब विस्थापन का दंश झेलती हुई भाषाओं का नए परिवेश और स्थान पर धीरे-धीरे प्रचलन से बाहर होते जाने और समाप्त हो जाने को हम क्या कहें?

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

अपनी-सी महादेवी

महादेवी जी को याद करना एक भरे-पूरे उत्सव को याद करने जैसा है। उनका न होना एक संपूर्ण मांगलिकता से संवाद करने का सुख देता है। उनको देखकर सादगी की सुंदरता पर सहज यकीन किया जा सकता है। वह अपने गद्य की तरह स्पष्ट और काव्य की तरह प्रांजल थीं। शब्द उनके पास आकर नए अर्थ पाते थे। वह साहित्य की साँसों से ही अपने लिए ऑक्सीजन जुटाती थीं। वह भारतीय स्त्री का गौरव और स्वाभिमान थीं। उन्हें जीवन के तमाम मोर्चों पर सक्रिय एवं क्रियाशील देखना अपने आप में एक विलक्षण अनुभव है। वह स्वाधीनता आंदोलन के कठिन काल में भी सतत क्रियाशील रहीं। उनका शिक्षण संस्थान, प्रयाग महिला विद्यापीठ लंबे समय तक क्रांतिकारियों की शरणस्थली रहा। वह आजादी के रणबाँकुरों को अंग्रेजों के चंगुल से बचाकर रखतीं और सुस्वाद भोजन कराते हुए शत्रु के आगे घुटने न टेकने की प्रेरणा देतीं। वह अपनी अभिन्न सखी सुभद्राकुमारी चौहान के साथ मिलकर क्रांतिकारियों के

यश मालवीय

जन्म : 18 जुलाई, 1962, कानपुर, उत्तर प्रदेश।

मुख्य कृतियाँ : आठ कविता संग्रह, दो बाल साहित्य सहित नाटक व व्यंग्य संग्रह प्रकाशित।

सम्मान : निराला सम्मान, ऋतुराज सम्मान, उमाकांत मालवीय स्मृति पुरस्कार, सर्जना सम्मान जैसे कई सम्मान।

लिए योजनाएँ बनातीं और आग उगलते पर्चे लिखतीं। इसी क्रम में उनके निकट दुर्गा भागवत यानी दुर्गा भाभी का आना हुआ। भाभी के भीतर भी क्रांति की चिनगारी दहक रही थी। इन लोगों ने मिलकर देश पर बलिदान हो जाने की अदम्य लालसा अपनी समकालीन पीढ़ी के मनमस्तिष्क में बोई। प्राण फूँके उन भारतवासियों की चेतना में जो अपने आपसे ही गाफिल हो रहे थे। आजादी के तराने रचे। ऐसे कुछ तराने महादेवी जी की लगभग अचर्चित रह गई कृति 'प्रथम आयाम' में संकलित हैं। वे कहती हैं—

मस्तक देकर आज खरीदेंगे हम ज्वाला/
जो ज्वाला नभ में बिजली है/
जिससे रवि शशि ज्योति जली हैं/
तारों में बन जाती है जो/
शीतलतादायक उजियाला

बावजूद इन अपवादों के उनके गीतों में स्वाधीनता आंदोलन के वक्त का वह ताप नहीं है जो दिनकर, नवीन या माखनलाल चतुर्वेदी में दिखाई देता है। इसका कारण पूछने पर प्रायः वह हँसकर टाल जाती थीं और बार-बार पूछे जाने पर कहती थीं कि वह अपने कवि पर कोई जबरदस्ती नहीं कर सकतीं। अपने समय से जुड़कर न लिखना यदि साहित्यिक बेईमानी है तो जबरन लिखना और भी बड़ी बेईमानी है। और फिर स्वाधीनता आंदोलन की सक्रियता उनके गद्य और जीवन में आ रही थी। बाह्य दबाव को वह कतई स्वीकार नहीं करती थीं। देश में बढ़ते संप्रदायवाद से क्षुब्ध होकर वह कहती थीं कि सांप्रदायिकता तो सत्ता के लिए संजीवनी जैसी ही होती है।

महादेवी जी को सबसे पहले कवि पिता उमाकांत मालवीय के साथ उनके अशोक नगर स्थित आवास पर देखा था। कैसा तो अतिथि सत्कार के आलोक से दिप-दिप कर रहा था उनका चेहरा। सुबह का समय था। वह अपने लॉन में आराम कुर्सी पर बैठी हुई थीं। उस दिन लग रहा था सूरज उनके ही चेहरे पर उगा है। आतिथेय की अजस्र आभा से आभासित था उनका आत्मीय व्यवहार।

कालांतर में इस आत्मीयता से रिश्ते की एक नाजुक डोर भी बाँधी। छायावाद के अन्यतम समालोचक गंगा प्रसाद पांडेय

जिन्होंने सबसे पहले महादेवी जी को 'महीयसी' और निराला को 'महाप्राण' विशेषण दिया था (आने वाले दिनों में ये विशेषण इन विभूतियों के नाम का ही हिस्सा हो गए), ने अपने सुपुत्र और महादेवी जी के पुत्रवत सहायक डॉ. रामजी पांडेय की बेटी आरती से मेरे विवाह का प्रस्ताव रखा। मेरा परिवार महामना मालवीय के परिवार से जुड़ता था और पांडेय जी सरयूपारीण थे। मुझे याद है कितने बेलौस होकर उन्होंने कहा था, "सरयूपारीण गंगापारीण कुछ नहीं होता, मैं केवल इतना जानती हूँ कि दोनों परिवार जुड़ेंगे तो एक अनोखा रिश्ता बनेगा।" और फिर संबंध तय हो जाने पर अत्यंत अपनेपन के साथ उन्होंने निमंत्रण पत्र तैयार किया था। यह लिखते हुए उनकी आँखें सजल हो आई थीं, "यश और आरती के विवाह से हमारे दो आत्मीय साहित्यिक परिवार एक हो रहे हैं।" और फिर दोनों परिवारों का एक होना उन्होंने अभूतपूर्व और अप्रतिम शैली में अनुभूत किया था। 23 जून, 1986 को वह बारात के स्वागत में आगे-आगे थीं। डॉ. पांडेय से कह रही थीं, "दूल्हा किस फाटक से आएगा? जिस फाटक से उसे आना हो, वहीं चलकर मेरी कुर्सी लगा दो। मैं सबसे पहले उसकी नजर उतारूँगी।"

बारात दरवाजे पर आ गई थी। मैंने उतरकर सबसे पहले उनके पाँव छुए। उन्होंने सिर पर हाथ रखा तो लगा जैसे पूरी सदी का ही हाथ मेरे सिर पर है। उस दिन शहर में कर्फ्यू लगा था। डॉ. रामजी पांडेय ने बताया कि मैंने बिस्मिल्लाह खाँ साहब का कैसेट लगा दिया है। कुछ देर तक तो वह सुनती रहीं, फिर बोलीं–

"बिस्मिल्लाह खाँ साहब का मैं भी बहुत सम्मान करती हूँ। उन्होंने हाशिए पर पड़े एक वाद्य को मुख्य धारा में ला दिया, पर दृष्टि का उत्सव तो तभी होगा जब शहनाई वादक घर आएँ और झूमकर दरवाजे पर शहनाई बजाएँ। ऐसा होगा तभी तो यह शादी का घर लगेगा।" कहना न होगा कि महादेवी जी ने जिलाधिकारी को फोन किया। पांडेय जी के लिए कर्फ्यू का पास बनवाया। वह कर्फ्यूग्रस्त

इलाके नखास कोने से शहनाई वादकों को जीप में बैठाकर घर लेकर आए और फिर जो शहनाई गूँजी तो महादेवी जी की आँखों में त्योहार साकार हो उठा।

एक बार मैं दोपहर में अशोक नगर गया। वह विश्राम कर रही थीं। मैं पांडेय जी और रानी बहू से मिलकर लौट आया। बाद में पता चला तो कहने लगीं कि "कलयुगी लड़का है भाई! अपने सास-ससुर से मिलकर चला गया। हम कौन होते हैं उसके। हमसे क्यों मिलता।" मेरे सफाई देने पर कि आप सो रही थीं, बोलीं, "भाई, सो रहे थे कोई मर थोड़े ही गए थे!" महादेवी जी कहती थीं, "उमाकांत हमको दीदी कहता है, आरती दादी कहती है, अब बताओ तुमसे मेरा क्या रिश्ता हुआ?"

वह उत्सवधर्मी थीं। त्योहार कोई भी हो, आत्मा के अतल तल से मनाती थीं। जन्माष्टमी पर आरती को बुला लेतीं। आरती ही उनके घर पर झाँकी सजातीं। हर आने-जाने वाले से बतातीं–"देखो, गुड़िया ने कितनी अच्छी झाँकी सजाई है, मेरे बालगोविंद जी का श्रृंगार उसी ने किया है।" 'नभ आज मनाता तिमिर पर्व धरती रचती आलोक छंद' की काव्य संवेदना को जीने वाली महादेवी जी दीपावली को जैसे अंतर के आलोक से नहला देती थीं। कहती थीं–"भाई, मैं तो माटी के दिये में नेह भरूँगी, छोटी-छोटी बाती बनाऊँगी, फिर देहरी पर रोशनी का पुंज धरूँगी। भीतर-बाहर दोनों तरफ उजाला हो जाएगा। जो कंपन दिये की लौ में है, वह भला बिजली के लट्टुओं में कहाँ? होली तो उनका जन्मदिन था। होली की रंगमयता से ही सजा हुआ इंद्रधनुषी व्यक्तित्व था उनका। एक बार की होली याद आती है। सुबह-सुबह चेहरे पर लाल, पीला, नीला, हरा रंग पोते एकदम बामची पतंग जैसा चेहरा लिए उनके घर पहुँचा तो पहले तो वह पहचान ही नहीं पाईं और फिर पहचानीं तो उठकर हँसते हुए बोलीं–"जाना होता कि यह रंग-रूप है लड़के का तो काहे अपनी लड़की ब्याहते?"

होली पर अपने आवास के प्रांगण में ही होलिका दहन करती थीं। रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, जगदीश गुप्त, अमृतराय, केशवचंद वर्मा सभी इकट्ठा हो जाते थे। एक साहित्यिक कुंभ जैसा लग जाता था। सबको गुझिया खिलाती थीं और फिर बारी-बारी से सभी की राई-नमक से नजर उतारती थीं।

हर बड़ी और महान विभूति की तरह ही महादेवी का व्यक्तित्व भी विलक्षण विरोधाभासों से भरा हुआ था। वह बकरीद के पर्व पर सुबह से ही उदास और अनमनी हो जाती थीं कि आज कितने ही अबोध और मासूम बकरे कुर्बानी के नाम पर हलाक कर दिए जाएँगे, वहीं दूसरी ओर अपने माली महादेव से अपने पाले कुत्तों के लिए बाजार से मीट भी मँगवाती थीं। अपने साथ रह रहे लोगों के प्रति उनका सदा ही एक संरक्षक भाव रहा, सखाभाव वह कभी नहीं रख सकीं।

जब महादेवी जी को बहुत बड़ा और महान बताया जाता है तो लगता है जैसे उन्हें हम सबसे दूर किया जा रहा हो। इसका मतलब यह नहीं कि वह बड़ी और महान नहीं थीं, पर घर-परिवार में वह साधारण मानुष की तरह ही रहती थीं। बात-बात पर कुढ़तीं, खीझतीं, हँसतीं-रोतीं और गुस्सा होती थीं। उनमें बुद्ध की नहीं, नितांत अपनी खालिस महादेवी वाली करुणा थी जो उन्हें सामान्य-सी लगकर भी विशिष्ट बनाती थी। उनका पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों पर अपार स्नेह था। एक बार मैंने डॉ. रामजी पांडेय से कहा कि—"आप लोग कब तक महादेवी जी को मीरा और बुद्ध बताते रहेंगे। आज जरूरत इस बात की है कि उनकी असाधारणता को भी साधारण ढंग से रेखांकित किया जाए। ऐसा करने पर ही वह जन-मन में और अधिक गहराई से जानी जा सकेंगी।" मेरे कहने पर डॉ. रामजी पांडेय ने मंगलेश डबराल के 'जनसत्ता' में तमाम बातें लिखते हुए यह भी लिख दिया कि कभी-कभी महादेवी जी को देखकर लगता है कि वह पशु-पक्षी के बच्चों को आदमियों के बच्चों से ज्यादा स्नेह देती हैं। इस संस्मरण पर पांडेय जी को कृतघ्न तक कहा गया, जबकि पांडेय जी ने अपना पूरा जीवन महादेवी जी की सेवा में खपा दिया था। पांडेय जी के न रहने पर डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन के पत्र का एक अंश इस संदर्भ विशेष में और याद आता है, जहाँ वह लिखते हैं कि यह सही है कि रामजी ने महादेवी जी के लिए अपना पूरा जीवन अर्पित कर दिया, बदले में उन्हें इस करुणा की देवी से क्या मिला? यहाँ पर ब्रेख्त भी याद आते हैं, जो लिखते हैं—"हर आठ-दस साल में एक महान आदमी, बोलो किसने भरा उसकी महानता का बिल।" वास्तव में रामजी पांडेय और उनके परिवार ने महादेवी जी की महानता का बिल ही भरा है।

यह सब लिखने का मतलब कतई उनके कद को कम करके आँकना नहीं है, बल्कि इस बात को समझने की कोशिश है कि कैसे महामानव बनाकर हम किसी अप्रतिम प्रतिभा को जनता से दूर कर देते हैं, जबकि सामान्य जीवन में वह असाधारण मनुष्य भी जीवन और जगत से सामान्य व्यक्ति की ही तरह व्यवहार करता है, उसमें भी हम जैसे मनुष्यों में पाई जाने वाली दुर्बलताओं के दर्शन हो सकते हैं। हर बड़ी और महान विभूति की तरह ही महादेवी का व्यक्तित्व भी विलक्षण विरोधाभासों से भरा हुआ था। वह बकरीद के पर्व पर सुबह से ही उदास और अनमनी हो जाती थीं कि आज कितने ही अबोध और मासूम बकरे कुर्बानी के नाम पर हलाक कर दिए जाएँगे, वहीं दूसरी ओर अपने माली महादेव से अपने पाले कुत्तों के लिए बाजार से मीट भी मँगवाती थीं। अपने साथ रह रहे लोगों के प्रति उनका सदा ही एक संरक्षक भाव रहा, सखाभाव वह कभी नहीं रख सकीं।

हिंदी की प्रबल पक्षधर होने के साथ वह तबीयत से अंग्रेजी अखबार 'नार्दर्न इंडिया पत्रिका' भी पढ़ती थीं, 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' मँगाती थीं। कुछ कहने पर डंके की चोट पर कहती थीं कि हमें किसी भाषा से बैर नहीं रखना चाहिए। अगर अंग्रेजी में अच्छी पत्रकारिता हो रही है तो उसे भी माना जाना चाहिए। मुझसे अकसर कहतीं—"तुम भी गीत लिखते हो या फिर आजकल के कवियों की ही तरह ऊबड़-खाबड़ छोटी-बड़ी पंक्तियाँ लिखते हो!"

वे बड़े मन से दूरदर्शन पर आने वाले फिल्मी गीतों का कार्यक्रम 'चित्रहार' देखती थीं। ठीक आठ बजे अपने तख्त पर आकर विराजमान हो जाती थीं और अपने स्पेशल कमेंट्स के साथ सिनेमा के गीतों का रस लेती थीं, आलोचना भी करती थीं और चित्रहार देखने से बाज भी न आती थीं।

(सेंटर ऑफ फोटोजर्नलिज्म एंड विजुअल कम्युनिकेशन, इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित पत्रिका 'बरगद' के जनवरी-फरवरी 2009 अंक से साभार)

लोक दृष्टि की शास्त्रीयता

लोक भावना और सामुदायिक चेतना से ही कलाएँ सिरजी जाती रही हैं। कह सकते हैं, कलाओं का आलोक सदा लोक चेतना से ही रहा है। इसलिए किसी भी सभ्यता के अस्तित्व और सांस्कृतिक अस्मिता की जब भी बात की जाएगी, कलाओं के लोक स्वरूपों पर भी हमें गहराई से विचारना होगा। इस दृष्टि से देखता हूँ तो पाता हूँ, कपिला वात्स्यायन ने भारतीय लोक संस्कृति के आलोक में कलाओं की शास्त्रीयता की गहरी समझ ही हमें नहीं दी, बल्कि मिथकों, आख्यानों की हमारी परंपरा के अध्ययन में प्रजातीय रूप में भारतीय जन के मिश्रित समूह की सांस्कृतिक और कला चेतना से भी बहुत से स्तरों पर हमें रू-ब-रू कराने का अवसर अपने लेखन से दिया है। उनकी लिखी पुस्तकों की बड़ी विशेषता यह है कि उनमें लोक कला परंपराओं में शास्त्रीयता के बीज तलाशे गए हैं, भारत की विविधता और संस्कृति के मिश्रित स्वरूप में पली-बढ़ी सभ्यता के अधुनापे में कला चिंतन का आकाश रचा गया है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि कपिला जी का समग्र कला-संस्कृति चिंतन, कला और जीवन के अंतरावलंबन और लोक कलाओं के सभ्यता के आरंभ से निरंतर बदलते और वर्तमान रूपों में आधुनिकता की पहचान कराने वाला है।

मुझे लगता है, कपिला जी के कला-चिंतन को लोक संस्कृति की उनकी समझ से देखे जाने और इस पर गहराई से विचार किए जाने की जरूरत है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित उनकी पुस्तक 'ट्रेडिशनल इंडियन थिएटर : मल्टीपल स्ट्रीम्स' जिसका हिंदी में बदिउज्जमा का अनुवाद 'पारंपरिक भारतीय रंगमंच : अनंत धाराएँ' को ही अगर देखें और उसके अंतर्निहित में जाएँगे तो पाएँगे कि भारत भर की पारंपरिक प्रदर्शनकारी कलाओं का गहन अध्ययन, सर्वेक्षण करते हुए उन्होंने लोक में प्रचलित कला रूपों, गाथाओं, परंपराओं को गहरे से खँगाला ही नहीं है, बल्कि शास्त्रीयता में उनके होने की गहरी तलाश की है। भले ही इस पुस्तक को पारंपरिक रंगमंच से अभिहित किया गया है, परंतु इसके मूल में उनका वह चिंतन ही है जिसमें लोक से जुड़े आलोक में कलाओं की हमारी समृद्ध-संपन्न परंपराओं और सभ्यता पर चिंतन किया गया है। इसीलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि कपिला के चिंतन, उनके लेखन को लोक के परिप्रेक्ष्य में गहरे से देखे जाने की जरूरत है। मुझे यह भी लगता है कि वह उस परंपरा की संवाहक थीं जिसमें देशभर में बिखरे भिन्न कला रूपों की अभिव्यक्ति को उनके अलग-अलग माध्यमों के आलोक में एक साथ देखते हुए उनकी समग्रता में सौंदर्य के भारतीय जीवन दर्शन को व्याख्यायित किया गया था।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' के विषद् अध्ययन और लोक से जुड़ी कला परंपराओं के आलोक में कपिला जी ने कलाओं के अंतर्संबंधों, कला रूपों की पारस्परिक निर्भरता और शाश्वतता के साथ ही सभ्यता

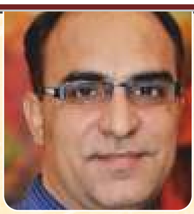

डॉ. राजेश कुमार व्यास

संप्रति : संयुक्त निदेशक, राज्यपाल, राजस्थान। केंद्रीय साहित्य अकादेमी के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित देश के चर्चित संस्कृतिकर्मी, कवि, कला आलोचक एवं यात्रा वृत्तांतकार। केंद्रीय ललित कला अकादमी की पत्रिका 'समकालीन कला' के एक अंक के अतिथि संपादक।

प्रकाशन : राजस्थान ललित कला अकादमी की पत्रिका 'आकृति' के 'लोक आलोक' और 'कलाओं के अंतःसंबंधों' पर प्रकाशित विशेष अंकों का संपादन। 'भारतीय कला', 'कलावाक्', 'रंगनाद', 'रस निरंजन' 'सुर जो सजे', (कला) 'नर्मदे हर', 'कश्मीर से कन्याकुमारी', (यात्रा-वृत्तांत), 'झरने लगते हैं शब्द', 'कविता देवै दीठ' (कविता संग्रह), 'सांस्कृतिक राजस्थान' आदि चर्चित पुस्तकें। दूरदर्शन द्वारा उनके लिखे एवं शोध पर आधारित 'डेजर्ट कॉलिंग' धारावाहिक का प्रसारण।

सम्मान : राजस्थान साहित्य अकादेमी, 'राहुल सांकृत्यायन', पत्रकारिता का 'माणक' अलंकरण सहित और भी अन्य सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9829102862

से जुड़े सरोकारों पर महती विमर्श किया। यह हम सभी जानते हैं कि लोक कलाएँ किसी भी अर्थ में अचल या जड़ नहीं होती हैं। समय संदर्भों में लोक कलाओं के रूप परिवर्तित होते रहते हैं। प्रचलित मान्यताओं, रिवाजों, धार्मिक आस्थाओं, प्रकृति से जुड़े विश्वासों में प्रायः प्रत्येक कला-रूप में समुदाय की जो सहभागिता रहती है,

> **कपिला जी का कहना था कि 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता ने इस बात पर बल दिया कि नाट्य ऐसी विधा और कला है जो समाज के सभी वर्गों और समुदायों के लिए है। यहाँ इस बात पर गौर करने की जरूरत है कि भरत ने नाट्यशास्त्र को पंचम वेद की संज्ञा इसलिए दी थी क्योंकि उसमें किसी भी वर्ग, श्रेणी के लिए कोई वर्जना नहीं है। वह सबके लिए है अर्थात पूरे लोक के लिए उसकी रचना की गई है। इसीलिए कपिला जी के चिंतन में यह बात विशेष रूप से उभरकर सामने आती है कि भरत के 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने सभी प्रकार के श्रेणीबद्ध स्तर विन्यास से ऊपर उठने की कलाओं की क्षमता का संकेत दिया है।**

उसका गहराई से अध्ययन करते हुए कपिला जी ने कलाओं के सौंदर्य पक्ष पर भी गहन विमर्श किया। इसीलिए उनके लेखन में कलाकृतियों- प्रदर्शनकारी कलाओं में होने वाले परिवर्तन, परिवर्द्धन और नवाचारों की प्रवृत्ति को विशेष रूप से लक्षित किया गया है। यही नहीं, लोक समुदाय द्वारा समय संदर्भों में अपनी ओर से उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ते-घटाते जाने पर भी उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि रखते हुए कई बार यह स्थापित भी किया कि सभ्यताओं के चिंतन में कलाओं में हो रहे परिवर्तनों पर विचार करेंगे तो बहुत कुछ नया मिलेगा, बल्कि भविष्य के समाज की दशा और दिशा निर्धारण में भी इससे मदद मिल सकती है।

लोक कलाओं के विभिन्न रूपों की प्रकार्य भिन्नता में व्यक्ति और समूह द्वारा उनकी उपयोगिता और उपभोगवाद के संदर्भ में भी उनके कला निष्कर्षों पर विचार करेंगे तो बहुत कुछ महत्वपूर्ण मिलेगा। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' की उस लोक दृष्टि को निरंतर उन्होंने अपने चिंतन का आधार बनाया जिसमें भरत ने नाट्य को विभिन्न कलाओं का संगम कहते-साधते हुए भी उसे स्वतंत्र कला के रूप में स्थापित किया है। कपिला जी का कहना था कि 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता ने इस बात पर बल दिया कि नाट्य ऐसी विधा और कला है जो समाज के सभी वर्गों और समुदायों के लिए है। यहाँ इस बात पर गौर करने की जरूरत है कि भरत ने नाट्यशास्त्र को पंचम वेद की संज्ञा इसलिए दी थी क्योंकि उसमें किसी भी वर्ग, श्रेणी के लिए कोई वर्जना नहीं है। वह सबके लिए है अर्थात पूरे लोक के लिए उसकी रचना की गई है। इसीलिए कपिला जी के चिंतन में यह बात विशेष रूप से उभरकर सामने आती है कि भरत के 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने सभी प्रकार के श्रेणीबद्ध स्तर विन्यास से ऊपर उठने की कलाओं की क्षमता का संकेत दिया है। अपनी पुस्तक 'ट्रेडिशनल इंडियन थिएटर : मल्टीपल स्ट्रीम्स' में देशभर में बिखरी रंगमंच की विरल परंपराओं का सांगोपांग अध्ययन ही उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि उनके बदलते स्वरूपों, संदर्भों और भिन्न प्रदेशों की मौखिक गाथाओं का उल्लेख करते हुए यह स्थापित किया है कि विभिन्न प्रांतों में गाथाओं के रूप भले ही साहित्यिक रचना पर आधारित हों, परंतु यह जरूरी नहीं है कि उनका संबंध देश की लिखित किसी साहित्यिक परंपरा से हो। अर्थात, उनका यह मानना था कि लिखित परंपरा की बजाय भिन्न स्थानों पर समयानुरूप मौखिकी से भी कलाओं के विरल रूप लोक में निरंतर विकसित होते रहे हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने अपनी इस पुस्तक में कुट्टियम, यक्षगान, भागवतमेला, रासलीला, यात्रा, भवाई, छऊ, तमाशा, अंकिआ-नाट और भाओना, स्वांग, नौटंकी, ख्याल आदि प्रदर्शनकारी लोक कलाओं की गहराई में जाते स्थान-विशेष की सूक्ष्म विशेषताओं को लिखे में जिया है तो अपने अध्ययन से इस बात को भी स्थापित किया कि प्रदर्शनकारी कलाओं के भिन्न कलारूपों, माध्यमों के बावजूद उनमें बहुत से स्तरों पर सांस्कृतिक एकरूपता है। इनमें परंपरा का जड़त्व नहीं है, बल्कि समय के साथ निरंतर इनमें आधुनिकता के बदलाव भी होते रहे हैं।

कलाओं का उनका लोकपक्ष इसलिए भी विरल है कि वहाँ पर सैद्धांतिकी ही नहीं है, बल्कि कला और कलाकारों से संवाद कर उनके अनुभवों की व्यावहारिकी को भी सम्मिलित किया गया है। वे प्रदर्शनकारी भारतीय कलाओं के अंतर्निहित में ले जाती शताब्दियों की कला की जीवंत परंपराओं में आधुनिकता के वास के भी नए संदर्भ सदा देती रही हैं। आदिवासी और ग्राम्य जीवन से जुड़ी कलाओं की निकटता का उनका लिखा और अनुभूत किया भी इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वहाँ पर मौखिक और परंपरागत लिखे के अनछुए संदर्भ उन्होंने दिए हैं। संस्कृत, संस्कृति और लोक कलाओं की विविधता को एकरूप में देखते हुए लोप होती जा रही कला परंपराओं की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं आकृष्ट किया, बल्कि प्रकृति और जीवन के कला-संबंधों को भी व्याख्यायित किया है।

कपिला जी का कला-संस्कृति चिंतन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे स्वयं बेहतरीन कलाकार थीं। लिखने और विमर्श की भारतीय परंपरा से उनका गहरा नाता था। पारंपरिक भारतीय काव्य, भाषा, तकनीक के साथ ही संगीत, नृत्य, चित्र, नाट्य प्रदर्शन के सूक्ष्म पहलुओं से जुड़ा उनका चिंतन इसलिए भी लुभाता है कि वहाँ कला का वह सौंदर्य पक्ष निरंतर ध्वनित होता है जिसमें रसानुभूति से कलाओं को देखा और समझा ही नहीं गया, बल्कि उसकी लोक समुदाय सहभागिता को भी जिया गया है। राजस्थान के पाबूजी की पड़ हो, ख्याल हो या फिर मध्य प्रदेश का आल्हा-उदल, महाराष्ट्र, गुजरात की हरिकथा, ओड़िशा की दशकथिया आदि की गहराई में

जाते हुए उन्होंने लोक से जुड़ी कला संवेदना के कथ्य, भाषा, तकनीक, संगीतमय प्रस्तुति के जीवंत रूपों का विरल विवेचन किया है। भारतीय कलाओं की उनकी सौंदर्य दृष्टि को उनके इस कथन से ही गहरे से समझा जा सकता है कि भारतीय कलाएँ स्वयं में कोई स्थिर या गतिहीन गुण नहीं हैं। यह सदा से एक रसानुभूति है, अनेक आशयों से संपन्न जीवनानुभूति।

कलाओं के मौलिक चिंतन से जुड़ी वह विरल वक्ता थीं। भारतीय कला संस्कृति से जुड़े ग्रंथों की व्याख्या, अनुवाद और संपादन के साथ ही कलाओं के संरक्षण का उनका कार्य इस दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है। कभी अच्छन महाराज से उन्होंने बाकायदा नृत्य की शिक्षा ली और स्वयं बहुत अच्छी कथक, भरतनाट्यम और मणिपुरी नृत्यांगना थीं। नृत्य के सामाजिक, अध्यात्म और ध्यान पक्ष के साथ ही लोक संवेदना से जुड़े उसके नातों पर भी उन्होंने महती दृष्टि दी तो भारतीय संस्कृति के सौंदर्य पक्ष की वैदिक व्याख्या के साथ ही अधुनातन सरोकारों का उनका चिंतन भी मथने वाला है। यूनेस्को की वह कार्यकारिणी सदस्य रहीं। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला संस्थान की शैक्षिक निदेशक, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की अध्यक्ष रहते हुए भारतीय कला और संस्कृति के संरक्षण, उन्नयन के साथ ही सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र के जरिए शिक्षकों के कला प्रशिक्षण की पहल करने में भी उनकी महती भूमिका रही। भारत सरकार ने उन्हें 1955 में पद्मभूषण और 1987 में पद्मविभूषण से सम्मानित किया तो सामुदायिक नेतृत्व के लिए उन्हें वर्ष 1966 में रेमन मैग्सेसे अवार्ड प्रदान किया गया। 1977 में हस्तशिल्प को बढ़ावा देने के लिए उन्हें यूनेस्को अवार्ड मिला। राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार, प्रतिष्ठित शंकरदेव पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी एवं ललित कला अकादमी रत्न अवार्ड, साहित्य कला परिषद का लाइफटाइम अचीवमेंट आदि पुरस्कारों से निरंतर सम्मानित किया जाता रहा। भारत सरकार में वह महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पदों पर रहीं तो दो बार राज्यसभा सदस्य भी मनोनीत हुईं।

25 दिसंबर, 1928 को पारंपरिक पंजाबी परिवार में जन्मीं कपिला मलिक के पिता रामलाल जाने-माने वकील थे तो माता सत्यवती मलिक कला संगीत मर्मज्ञ थीं। कपिला जी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. अंग्रेजी में किया और फिर मिशिगन से इतिहास में भी एम.ए. किया। भारतीय वेद, पुराण, धर्म, दर्शन, इतिहास, कला-पुरातत्व के विरल व्याख्याता वासुदेव शरण अग्रवाल की इतिहास, पुरातत्व और वास्तुकला विषय में वह प्रथम पी-एच.डी. शिष्या थीं। सुप्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' से वह 1956 में विवाह बंधन में बँधीं, परंतु 1969 में उनका पति से संबंध-विच्छेद हो गया। वर्ष 1985 में जब पूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी ने अपनी माता इंदिरा गांधी की स्मृति में 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र' की स्थापना की तो संस्थापक निदेशक कपिला जी को बनाया गया। इंडिया इंटरनेशनल की आजीवन न्यासी रहने के साथ ही वह उसके एशिया प्रोजेक्ट की अध्यक्ष भी रहीं।

कपिला जी का कला प्रदर्शनियों से गहरा सरोकार था। दिल्ली स्थित 'एकेडमी ऑफ विजुअल आर्ट' की वह संरक्षक थीं। याद आता है, उनसे दिल्ली में पहली बार एक कला प्रदर्शनी में ही भेंट हुई थी, तभी संवाद में उनसे भारतीय कलाओं की एकरूपता के साथ ही लोक से जुड़ी कला संवेदना पर महती बातें सुनने को मिली थीं। सुप्रसिद्ध कलाकार कालीचरण गुप्ता के आग्रह पर उन्होंने निधन से कुछ ही समय पहले राजधानी दिल्ली में 'एकेडमी ऑफ विजुअल मीडिया' द्वारा आयोजित भारत-कोरिया कला से जुड़ी उस कला प्रदर्शनी का लोकार्पण किया था जिसमें भारत और कोरिया के कला संबंधों पर भी महती विमर्श हुआ था। इस प्रदर्शनी के दौरान भी संवाद में उन्होंने भारतीय कला-संस्कृति की प्राचीन परंपराओं के साथ दूसरे देशों की कलाओं से जुड़ी संस्कृति विनिमय पर निरंतर कार्य किए जाने पर जोर दिया था। असल में कपिला जी का यह मानना था कि संस्कृतियों के अध्ययन और कलाओं के परस्पर विनिमय से सभ्यताओं को सर्वथा अलग ढंग से देखे-समझे और परखे जाने का अवसर मिलता है और इसमें लोक से जुड़ी संवेदना को भी लोक मान्यताओं, विश्वासों, परंपराओं और रीति-रिवाजों के मूर्त-अमूर्त स्वरूपों में समझे जाने की जरूरत है। लोक कलाओं के आलोक में जातीय भावना के विकास, नई सांस्कृतिक चेतना के उदय, भविष्य के समाज की उभरती परिकल्पनाओं का उनका चिंतन एक ऐसे दृष्टिकोण का विकास करने वाला है जिसमें कलाओं के विकास से ही समाज के उत्कर्ष की राह तलाशी गई है। हालाँकि उनके इस चिंतन पर बहुत अधिक मनन नहीं हुआ है, परंतु मुझे लगता है, उनके समग्र लिखे और व्याख्यायित में लोक से जुड़ी कला संवेदना के सूत्र तलाशे जाएँगे तो बहुत कुछ महत्वपूर्ण निकलकर आएगा। वह विरल दृष्टि भी हमें मिलेगी, जिसमें लोक दृष्टि में भारतीय संस्कृति की शास्त्रीयता का गान किया गया है।

एक बेहतरीन नस्रनिगार भी थे मौलाना अबुल कलाम आजाद

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया) की स्थापना 01 अगस्त, 1957 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गई थी। मौलाना अबुल कलाम आजाद (15 अगस्त, 1947–22 फरवरी, 1958) तत्कालीन शिक्षा मंत्री थे।

जिन महानुभावों ने देश को आजाद कराने के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने तथा स्वतंत्र भारत में शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और कला के उत्थान के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया, उनमें मौलाना अबुल कलाम आजाद का नाम बड़े गर्व से लिया जा सकता है। वे सचमुच एक महान राष्ट्रवादी नेता थे। मौलाना अबुल कलाम आजाद के पूर्वज मुगल शासक बाबर के शासनकाल में ईरान से भारत आए थे। उनके पिता का नाम मौलाना ख़ैरुद्दीन था जो अरबी भाषा और इस्लाम धर्म-दर्शन के बहुत बड़े विद्वान थे। अंग्रेजों के दमनचक्र से पीड़ित होकर मौलाना ख़ैरुद्दीन सन् 1857 में भारत छोड़कर मक्का में जाकर बस गए। वहीं एक अरबी विद्वान की बेटी से उनका निकाह हो गया।

सीताराम गुप्ता

जन्म : 06 जुलाई, 1954, दिल्ली।

शिक्षा : हिंदी भाषा के अतिरिक्त रूसी, उर्दू, फारसी व अरबी भाषाओं का भी अध्ययन। टेलिविजन प्रजेंटेशन में डिप्लोमा।

प्रकाशन/कृति : कविता-संग्रह 'मेटामॉफोसिस' तथा 'मन की शक्ति' द्वारा उपचार विषयक पुस्तक 'मन द्वारा उपचार' फुल सर्कल द्वारा प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य तथा भाषा विषयक लेख, व्यंग्य, कथा-साहित्य आदि प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल : 09555622323

ई-मेल : srgupta54@yahoo.co.in

मौलाना आजाद का जन्म 11 नवंबर, 1888 को मक्का में ही हुआ। उनके जन्म के कुछ समय बाद ही सन् 1890 में उनके माता-पिता भारत लौट आए और कोलकाता में रहने लगे। मौलाना आजाद के बचपन का नाम था गुलाम मुहीउद्दीन हैदर। वे बचपन से ही अत्यंत प्रखर प्रतिभा के स्वामी थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। पहले उनके पिता ने उन्हें पढ़ाया तथा बाद में उन्हें पढ़ाने के लिए दूसरे अध्यापक नियुक्त किए गए। कम उम्र में ही वे कई विषयों में पारंगत हो गए। मौलाना आजाद को अपने बचपन के नाम में गुलाम शब्द से बड़ी बेचैनी होती थी, इसलिए उन्होंने अपना नाम बदलकर 'अबुल कलाम आजाद' रख लिया। 13 वर्ष की उम्र में इनका निकाह ज़ुलैख़ा बेगम से हुआ।

अबुल कलाम आजाद ने सिर्फ 14 साल की उम्र में सन् 1902 में एक साहित्यिक पत्रिका 'लिसानुस्सिदक़' का संपादन प्रारंभ किया जो अत्यंत चर्चित हुई। उन्होंने सन् 1912 में 'अलहिलाल' नामक उर्दू साप्ताहिक पत्र भी निकाला जिस पर बाद में अंग्रेज सरकार ने रोक लगा दी। मौलाना आजाद में भारतीय राष्ट्रीय विचारधारा कूट-कूटकर भरी हुई थी। राष्ट्रीय आंदोलन में उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया। गांधी जी, नेहरू जी तथा अन्य नेताओं की तरह मौलाना आजाद के जीवन का भी एक बहुत बड़ा हिस्सा जेलों में गुजरा। जवाहरलाल नेहरू अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' (Discovery of India) में लिखते हैं—

वर्ष 1912 में दो नए साप्ताहिक अख़बार निकलने शुरू हुए—उर्दू में 'अलहिलाल' और अंग्रेजी में 'द कामरेड'। 'अलहिलाल' का आरंभ मौलाना अबुल कलाम आजाद ने किया। ये 24 वर्ष के प्रतिभाशाली नवयुवक थे जो 15 से 20 वर्ष

की आयु में ही अरबी और फारसी के ज्ञान और गहन अध्ययन के लिए प्रसिद्ध हो गए थे। इसके साथ ही उन्होंने बाहर की इस्लामी दुनिया के बारे में जानकारी हासिल की और उन सुधारवादी आंदोलनों के बारे में भी, जो वहाँ चल रहे थे। उन्होंने धर्मग्रंथों की व्याख्या बुद्धिवादी दृष्टिकोण से की। वे इस्लामी देशों में किसी भी अन्य भारतीय मुसलमान की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हुए।

अलीगढ़ कॉलेज (अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी) के संस्थापक सर सैयद अहमद खान से उनका संबंध अवश्य रहा, लेकिन अलीगढ़ कॉलेज की परंपरा अलग थी जो राजनीतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से रूढ़िवादी थी। अपने विद्यार्थियों के सामने वे जो मुख्य

इस युवा लेखक और पत्रकार ने मुस्लिम बुद्धिजीवी समुदाय में सनसनी पैदा कर दी। यद्यपि मुस्लिम बुजुर्गों ने उन पर भौहें चढ़ाईं, पर युवा पीढ़ी के मस्तिष्क में मौलाना आजाद के शब्दों ने उत्तेजना पैदा कर दी। सन् 1940 में मौलाना आजाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने अपने संदेश में कहा था कि यदि हिंदू-मुस्लिम के भेदभाव की कीमत पर हमें 24 घंटे के अंदर भी आजादी मिलती है तो हम उसे ठुकरा देंगे, क्योंकि देश की एकता और अखंडता आजादी से अधिक महत्व रखती है। वे हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। धर्म के नाम पर दो राष्ट्रों के निर्माण का उन्होंने पुरजोर विरोध किया।

लक्ष्य रखते थे, वह था निचले दर्जे की सरकारी नौकरियों में प्रवेश करना। इसके लिए सरकार समर्थक रवैया अनिवार्य था और राष्ट्रवाद व विद्रोह के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। अलीगढ़ कॉलेज का समुदाय अब नए मुसलमान बुद्धिजीवियों का नेतृत्व कर रहा था और कभी-कभी प्रकट रूप से, पर अधिकतर परदे के पीछे से लगभग हर मुस्लिम आंदोलन को प्रभावित करता था। मुस्लिम लीग की स्थापना मुख्य रूप से इन्हीं लोगों के प्रयास से हुई। अबुल कलाम आजाद ने इस पुरातनपंथी और राष्ट्रविरोधी भावना के गढ़ पर हमला किया। यह काम उन्होंने ऐसे विचारों के प्रसार से किया, जिन्होंने अलीगढ़ परंपरा की जड़ें ही खोद दीं।

इस युवा लेखक और पत्रकार ने मुस्लिम बुद्धिजीवी समुदाय में सनसनी पैदा कर दी। यद्यपि मुस्लिम बुजुर्गों ने उन पर भौहें चढ़ाईं, पर युवा पीढ़ी के मस्तिष्क में मौलाना आजाद के शब्दों ने उत्तेजना पैदा कर दी। सन् 1940 में मौलाना आजाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने अपने संदेश में कहा था कि यदि हिंदू-मुस्लिम के भेदभाव की कीमत पर हमें 24 घंटे के अंदर भी आजादी मिलती है तो हम उसे ठुकरा देंगे, क्योंकि देश की एकता और अखंडता आजादी से अधिक महत्व रखती है। वे हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे। धर्म के नाम पर दो राष्ट्रों के निर्माण का उन्होंने पुरजोर विरोध किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मौलाना आजाद भारत के पहले शिक्षा मंत्री बने और 1958 में अपनी मृत्यु तक इस पद पर बने रहे। शिक्षा मंत्री के रूप में उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य किए जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है—देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क करना। उच्च और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। आईआईटी (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) और यूजीसी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) जैसे राष्ट्रीय संस्थान उन्हीं की परिकल्पना का परिणाम हैं। मौलाना आजाद ने वर्ष 1951 में आईआईटी (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान) खड़गपुर और वर्ष 1953 में यूजीसी का उद्घाटन किया। उनके इसी योगदान को रेखांकित करते हुए आज उनकी जयंती को प्रतिवर्ष 11 नवंबर को 'राष्ट्रीय शिक्षा दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

साहित्य, संस्कृति और कला के विकास के लिए उन्होंने कई राष्ट्रीय अकादमियों की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ललित कला अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, साहित्य अकादेमी व आईसीसीआर (भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद) आदि महत्वपूर्ण

संस्थानों को स्थापित करने का श्रेय मौलाना आजाद को ही जाता है। उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 1992 में मौलाना आजाद को मरणोपरांत भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

मौलाना आजाद का दृष्टिकोण अधिक उदार और तर्कसंगत था। इस कारण वे पुराने नेताओं के सामंती, संकीर्ण धार्मिकता और अलगाववादी दृष्टिकोण से दूर थे। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण वे अनिवार्य रूप से भारतीय राष्ट्रवादी थे। मौलाना आजाद की शैली में उत्तेजना और तेजस्विता थी, क्योंकि कभी-कभी वह फारसी पृष्ठभूमि के कारण कुछ कठिन प्रतीत होती थी। नए विचारों के लिए उन्होंने नई शब्दावली का प्रयोग किया और उर्दू भाषा जैसी आज है, उसे यह रूप देने में निश्चित ही उनका योगदान था। उनमें मध्ययुगीन पंडिताऊपन, 18वीं शताब्दी की तार्किकता और आधुनिक दृष्टिकोण का विचित्र मेल था।

'हसरत' मोहानी उर्दू के मशहूर शायर हुए हैं। उनकी ग़ज़लें और नज़्में बहुत लोकप्रिय रही हैं और आज भी हैं। इसके बावजूद उन्होंने अपने एक शेर में मौलाना 'अबुल कलाम' आजाद की नस्र अर्थात गद्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

जब से देखी 'अबुल कलाम' की नस्र,
नज़्मे-'हसरत' में कुछ मज़ा न रहा।

मौलाना अबुल कलाम आजाद की नस्र (गद्य) सचमुच बहुत ऊँचे दर्जे की है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मौलाना अबुल कलाम आजाद अहमदनगर किले के क़ैदख़ाने में बंद रहे। उन्होंने जेल की चारदीवारों के भीतर भी खुशियाँ तलाश लीं क्योंकि खुश रहने की इनसानी फितरत को उन्होंने मन से नहीं जाने दिया। उनकी नस्र (गद्य) का एक नमूना देखिए। मौलाना आजाद लिखते हैं—

क़ैदख़ाने की चारदीवारी के अंदर भी सूरज हर रोज़ चमकता है और चाँदनी रातों ने कभी क़ैदी और गैर-क़ैदी में इम्तियाज़ नहीं किया। जिस क़ैदख़ाने में सुबह हर रोज़ मुस्कराती हो, जहाँ शाम हर रोज़ पर्दा-ए-शब में छुप जाती हो, जिसकी रातें कभी सितारों की क़ंदीलों से जगमगाने लगती हों, कभी चाँदनी की हुस्नअफरोज़ियों से जहाँ ताब रहती हों, जहाँ दोपहर हर रोज़ चमके, शफ़क़ हर रोज़ निखरे, परिंदे हर सुबहो-शाम चहकें, उसे क़ैदख़ाना होने पर भी ऐशो-मसर्रत के सामान से ख़ाली क्यों समझ लिया जाए।

जहाँ सरोसामानकार की तो इतनी फ़िरावानी है कि किसी गोशे में भी गुम नहीं हो सकता। मुसीबत सारी यह है कि खुद हमारा दिमाग़ ही गुम हो जाता है। हम अपने से बाहर सारी चीज़ें ढूँढ़ते रहेंगे, मगर अपने खोए हुए दिल को कभी नहीं ढूँढ़ेंगे। हालाँकि अगर उसे ढूँढ़ निकालें तो ऐशो-मसर्रत का सरोसामान इस कोठरी के अंदर सिमटा हुआ मिल जाए।

ऐवानो-महल न हों तो किसी दरख़्त के साए से काम लें, दीबा-ओ-मख़मल का फ़र्श न मिले तो सब्ज़ा-ए-ख़ुदरौ के फ़र्श पर जा बैठें। अगर बर्क़ी रोशनी के कँवल मयस्सर नहीं हैं तो आसमान की क़ंदीलों को कौन बुझा सकता है—अगर दुनिया की सारी मस्नूई खुशियाँ ओझल हो गई हैं तो हो जाएँ। सुबह अब भी हर रोज़ मुस्कराएगी, चाँदनी अब भी हमेशा जल्वाफ़रोशियाँ करेगी—अगर दिले-ज़िंदा पहलू में न रहे तो ख़ुदारा बतलाइए इसका बदल कहाँ ढूँढ़ें? उसकी ख़ाली जगह भरने के लिए किस चूल्हे के अंगारे काम देंगे?

मैं आपको बतलाऊँ इस राह में मेरी कामरानियों का राज़ क्या है। मैं अपने दिल को मरने नहीं देता। कोई हालात हो, कोई जगह हो, उसकी तड़प कभी धीमी न पड़ेगी। मैं जानता हूँ कि जहाँ ज़िंदगी की सारी रौनक़ें इस मैक़दा-ए-ख़ल्वत के दम से हैं। ये उजड़ा और सारी दुनिया उजड़ गई।

मौलाना अबुल कलाम आजाद की नस्र के इस भाग (गद्यांश) को पढ़ने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि वे न केवल एक बहुत अच्छे लेखक और चिंतक थे, अपितु जीवन के प्रति उनका जो दृष्टिकोण था, वह भी बहुत सकारात्मक और आशावादी था। वे जब तक इस नश्वर संसार में रहे, अपने इसी दृष्टिकोण के कारण समाज और राष्ट्र को भी सकारात्मक दिशा प्रदान करते रहे। भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में ही नहीं, अपितु स्वतंत्रता के बाद देश में शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और कला के विकास में उनका जो योगदान है, वह हमेशा याद किया जाता रहेगा।

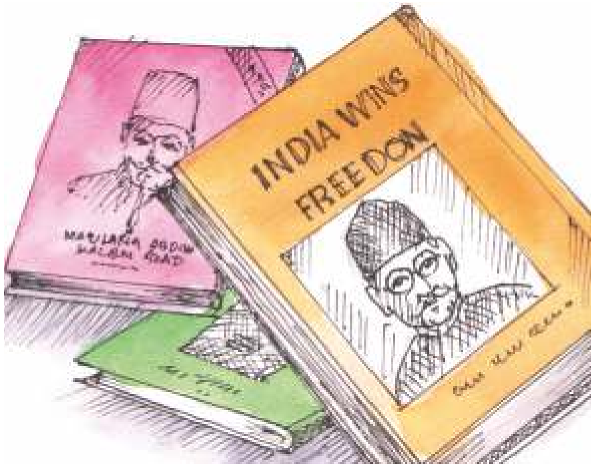

'क़ुर्आन' की टीका के अतिरिक्त उन्होंने जो किताबें लिखी हैं, उनमें 'ग़ुबारे-ख़ातिर', 'क़ौले-फ़ैसल' व 'तज़किरा' बहुत प्रसिद्ध हैं। तज़किरा मौलाना आजाद द्वारा उर्दू में लिखे गए संस्मरणों का संग्रह है जिसका बाद में प्रो. हुमायूँ कबीर ने अंग्रेजी में अनुवाद करने के बाद मौलाना आजाद की आत्मकथा 'इंडिया विंस फ्रीडम' (India Wins Freedom) तैयार करके उसका अंग्रेजी में प्रकाशन करवाया। एक प्रखर शिक्षाविद, क़ुर्आन के भाष्यकार और विभिन्न विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना करने वाले मौलाना आजाद का इंतक़ाल 22 फरवरी, 1958 को हुआ। उनकी मजार दिल्ली की जामा मस्जिद के सामने स्थित है।

शब्दार्थ :

इम्तियाज़ : फर्क, अंतर्भेद; **हुस्नअफरोज़ी** : सौंदर्य वृद्धि; **शफ़क़** : उषा; **ऐशो-मसर्रत** : सुख-चैन; **सरोसामान** : सामग्री, जिंदगी की जरूरी चीजें; **फ़िरावानी** : प्रचुरता; **ऐवानो-महल** : राजप्रासाद; **दीबा** : एक प्रकार का रेशमी कपड़ा; **सब्ज़ा-ए-ख़ुदरौ** : अपने आप उगने वाली घास; **बर्क़ी रोशनी** : बिजली की रोशनी; **क़ंदील** : दीपक, चिराग; **मस्नूइ** : कृत्रिम, बनावटी; **जल्वाफ़रोशी** : जल्वा बिखेरना; **कामरानी** : कामयाबी; **मैक़दा** : शराबखाना; **ख़ल्वत** : एकांत।

राँची में सुभाष की यादें

देश की आजादी में सुभाष चंद्र बोस की एक प्रमुख भूमिका रही। अपनी नेतृत्व क्षमता के कारण देश ने उन्हें 'नेताजी' का संबोधन दिया। बचपन से ही उनमें देशभक्ति कूट-कूटकर भरी थी। किशोरवय में माँ को लिखे पत्रों में उनकी मनःस्थिति को समझ सकते हैं। जिस उम्र में युवा खेल-कूद और पढ़ाई में अपना समय व्यतीत करते हैं, उसमें सुभाष बाबू देश की आजादी के सपने देख रहे थे। वे देश की दुर्दशा से चिंतित थे। किशोरवय में विवेकानंद का उन पर जबरदस्त प्रभाव था। वे अपनी अधूरी आत्मकथा में दर्ज भी करते हैं—"जिस समय विवेकानंद का मेरे जीवन में प्रवेश हुआ, उस समय मेरी आयु सिर्फ 15 वर्ष की थी। इस समय मेरे संपूर्ण जीवन में क्रांति आ गई और सभी चीजें उलट-पुलट हो गई थीं। स्वामीजी की शिक्षाएँ और उनकी महानता का बोध होने में वाकई एक लंबा समय लगा, पर इसका असर शुरू से ही मेरे मस्तिष्क पर छाप छोड़ चुका था। उनका चित्र और उनकी शिक्षाएँ दोनों ही मेरे सामने आ चुकी थीं।"

संजय कृष्ण

जन्म : जमानियाँ स्टेशन, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : स्नातकोत्तर।

संप्रति : दैनिक जागरण समाचार पत्र में मुख्य उपसंपादक।

संपादन : जमदग्नि बीथिका नामक पत्रिका (1997-2005)

लेखन एवं प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, एक दर्जन से अधिक कृतियाँ प्रकाशित।

पुरस्कार : केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय की ओर से प्रथम राहुल सांकृत्यायन पर्यटन पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल– 9835710937

ईमेल– skrishnasanjay1973@gmail.com

सुभाष बाबू का बचपन ओड़िशा के कटक में बीता। यहीं उनकी आरंभिक शिक्षा हुई थी और तब राँची भी भद्र बंगालियों का एक ग्रीष्मकालीन अड्डा होता था। कुछ ने अपने स्थायी भवन भी बना रखे थे जो गरमी और दुर्गापूजा के दौरान यहाँ आते थे। राँची से कटक भी बहुत दूर नहीं था। किशोरवय से वे राँची आते रहे थे। कहाँ, किनके यहाँ, यह पता नहीं चल सका है। यद्यपि आज के झारखंड की बात करें तो उनके परिवार का नाता तो जमशेदपुर, धनबाद, राँची से था ही, टाटा कंपनी में मजदूर आंदोलन में सुभाष बाबू ने सक्रिय भूमिका निभाई थी। राँची तो आना-जाना किशोरवय से ही था। राँची से ही उन्होंने अपनी माँ को कई पत्र लिखे थे। एक पत्र 21 नवंबर, 1928 को जमशेदपुर से भी लिखा। सन् 1913 से लेकर 1940 तक वे यहाँ आते रहे।

लालपुर में वे फणींद्रनाथ आयकत के यहाँ रहते थे। जब राँची आते तो सर्कुलर रोड स्थित मशहूर क्रांतिकारी डॉ. यदुगोपाल मुखर्जी के यहाँ भी आते-जाते रहते थे। डॉ. यदुगोपाल मुखर्जी के ही पुत्र हैं डॉ. सिद्धार्थ मुखर्जी। वे बताते हैं कि जब कभी सुभाष बाबू राँची आते, पिताजी के यहाँ जरूर आते और आजादी के आंदोलन को लेकर राय-मशवरा करते। डॉ. यदुगोपाल क्रांतिकारी थे। बंगाल से उन्हें सरकार ने दर-बदर कर दिया तो वे राँची आ गए। अनुशीलन समिति से जुड़े होने के कारण क्रांति की दिशा अलग थी, लेकिन जब गांधी जी से राँची में इनकी भेंट हुई तो फिर इनकी दिशा बदल गई और कांग्रेस के साथ जुड़ गए। देश जब आजाद हो गया और डॉ. राजेंद्र प्रसाद देश के राष्ट्रपति बने तो उन्होंने डॉ. यदुगोपाल मुखर्जी से बिहार का गवर्नर बनने का अनुरोध किया, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। राँची में डॉ. यदुगोपाल मुखर्जी के घर गरम-नरम सभी तरह के नेताओं का आना-जाना लगा रहता था। राँची से 40 किमी. दूर रामगढ़ में 18 से 20 मार्च, 1940 में कांग्रेस अधिवेशन में वे भाग लेने आए थे। उन्हें चाइबासा से राँची के मशहूर चिकित्सक डॉ. पी.एन. चटर्जी अपनी

विंटेज कार से लेकर आए थे। यहाँ से फिर वे रामगढ़ गए। डॉ. चटर्जी खुद गाड़ी चलाकर उन्हें ले गए थे। वहाँ मौसम भी खराब हो गया था। यह अधिवेशन भी बड़ा ऐतिहासिक हुआ। यहीं पर सुभाष चंद्र बोस ने नई पार्टी खड़ी की। उन्हें स्वामी सहजानंद सरस्वती का भी साथ मिला। राँची के काँटाटोली स्थित नेताजी नगर उन्हीं की याद में बसाया गया। अगले साल 1941 में वह देश से विदा हुए। वह 16 जनवरी, 1941 की रात थी, जब वह कोलकाता के अपने घर से छद्मवेश में निकले। रात 1:30 का समय था। जर्मन वांडरर कार थी। कार घर के बाहर निकली और फिर जीटी रोड पर दौड़ने लगी। आसनसोल से फिर धनबाद की ओर कार मुड़ी और यहाँ से बरारी। यहाँ सुभाष के भतीजे अशोकनाथ बोस रहते थे। यहाँ वे सुबह नौ बजे पहुँचे। अशोक भी सुभाष के बदले रूप को नहीं पहचान सके। तब के बिहार और अब के झारखंड के गोमो स्टेशन में 17 जनवरी को वे अपने दोनों भतीजों और अशोक की पत्नी के साथ आए। उन्हें लौट जाने का आदेश देकर वह स्वयं ट्रेन की प्रतीक्षा करने लगे। ट्रेन आई। सुभाष प्रथम श्रेणी के कंपार्टमेंट की ओर बढ़े। कुली ने उनका सामान अंदर किया। आधी रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा। दिल्ली-कालका मेल चल पड़ी। 18 जनवरी को उन्होंने दिल्ली से पेशावर के लिए फ्रंटियर ट्रेन पकड़ी। 19 जनवरी को वे पेशावर छावनी पहुँच गए। इसके बाद वे रूस चले गए। 26 जनवरी, 1941 को पता चला कि ब्रिटिश पुलिस और खुफिया को चकमा देते हुए सुभाष नदारद हो गए हैं। कोई कहता, सुभाष हिमालय की ओर चले गए। कोई कहता, क्रांति उन्हें रास नहीं आई। देश-दुनिया को एक साल बाद, 19 फरवरी, 1942 को पता चला कि सुभाष जिंदा हैं। उन्होंने आकाशवाणी से खबर दी—'मैं सुभाष चंद्र बोस आजाद हिंद रेडियो के माध्यम से आपसे बात कर रहा हूँ। एक साल से मैं चुपचाप और धैर्य से घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था। अब समय आ गया है।'

फणींद्रनाथ आयकत के पोते विष्णु आयकत बताते हैं कि एक बार यहाँ रहते हुए उनकी चप्पल और बालों में कंघी करने वाला ब्रश यहीं छूट गया। तब वे विद्यासागरी चप्पल पहनते थे। पुरुलिया में मेरे चाचा रहते थे। वहाँ दोनों चीजें भिजवा दीं और वहीं एक म्यूजियम में दोनों चीजें सुरक्षित हैं। फणींद्रनाथ आयकत सिविल कंट्रेक्टर थे। अंग्रेज ही उन्हें लेकर राँची आए थे। वे विष्णुपुर, बांकुड़ा, प. बंगाल के रहने वाले थे। राँची का धीरे-धीरे विकास हो रहा था। नए-नए भवन बनाने थे इसलिए अंग्रेज इन्हें राँची लेकर आए। उनका बनाया हुआ जेपीएससी भवन है। राजभवन, राँची रेलवे स्टेशन, राँची क्लब जैसे भवन आज भी उनकी याद दिलाते हैं। राजभवन के बैठके में जो लकड़ी इस्तेमाल हुई है, वह तमाड़ के जंगलों से आई थी। जिस बंगले में विष्णु आयकत रहते थे, उसका नाम 'बेटिका' है। 1922 में निर्मित इसकी डिजाइन राँची क्लब की तरह है। यह चूना-सुर्खी ईंट से बना हुआ है। इसमें लोहे के बीम तथा मार्टिन बर्न्स कंपनी के टाइल्स लगे

हुए हैं। 3.5 एकड़ में यह बंगला फैला हुआ है। ऐसी सुभाष की यादें राँची और झारखंड में बिखरी पड़ी हैं।

राँची से लिखे गए माँ को पत्र

राँची
रविवार

आदरणीय माँ,

मुझे काफी समय से कलकत्ता के समाचार नहीं मिले हैं। आशा करता हूँ कि आप सब स्वस्थ होंगे। मैं समझता हूँ कि आपने शायद समयाभाव के कारण पत्र नहीं लिखा है।

मेजदादा की परीक्षा कैसी रही? क्या आपने मेरा पूरा पत्र पढ़ लिया था? अगर आपने नहीं पढ़ा तो मुझे दुख होगा।

माँ, मैं सोचता हूँ कि क्या इस समय भारत माता का एक भी सपूत ऐसा नहीं है, जो स्वार्थरहित हो? क्या हमारी मातृभूमि इतनी अभागी है? कैसा था हमारा स्वर्णिम अतीत और कैसा है यह वर्तमान! वे आर्यवीर आज कहाँ हैं, जो भारत माता की सेवा के लिए अपना बहुमूल्य जीवन प्रसन्नता से न्योछावर कर देते थे?

आप माँ हैं, लेकिन क्या आप केवल हमारी ही माता हैं? नहीं, आप सभी भारतीयों की माँ हैं और यदि सभी भारतीय आपके पुत्र हैं तो क्या आपके पुत्रों का दुख आपको व्यथा से विचलित नहीं कर देता? क्या कोई भी माता हृदयहीन हो सकती है? फिर क्या कारण है कि उसके बच्चों की ऐसी दुर्दशा होते हुए भी माँ अप्रभावित बनी हुई है? मेरी माँ, आपने सभी देशों की यात्रा की है, क्या भारतीयों की वर्तमान दशा को देखकर आपका हृदय रक्त के आँसू नहीं बहाता? हम अज्ञानी हैं और इसलिए हम स्वार्थी बन सकते हैं, लेकिन कोई माँ कभी भी स्वार्थी नहीं बन सकती क्योंकि माँ अपने बच्चों के लिए जीवित रहती है। अगर यह सच है तो क्या कारण है कि उसके बच्चे कष्ट से बिलबिला रहे हैं और वह फिर भी अप्रभावित है। तो, क्या माँ भी स्वार्थी हो सकती है? नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता, माँ कभी स्वार्थी नहीं बन सकती।

माँ, केवल देश की ही दुर्दशा नहीं हो रही है। आप देखिए कि हमारे धर्म की हालत क्या है? हमारा हिंदू धर्म कितना और कैसा पवित्र

था और आज वह किस प्रकार पतन के गर्त में जा रहा है। आप उन आर्यों की बात सोचें जिन्होंने इस धरती की शोभा बढ़ाई थी और अब उनके पतित वंशजों को देखें। तो क्या हमारा सनातन धर्म विलुप्त होने जा रहा है? आप देखें कि किस प्रकार नास्तिकता, श्रद्धाहीनता और अंधविश्वास का बोलबाला है। इसी का परिणाम है इतना अधिक पाप और जन-जन के लिए दुख और कष्ट। देखिए कि जो आर्य जाति इतनी धर्मप्राण थी, उसी के वंशज आज कितने अधार्मिक और नास्तिक हो गए हैं। उस अतीत में मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य ध्यान, प्रार्थना और उपासना था, जबकि आज कितने लोग हैं, जो जीवन में एक बार भी प्रभु को पुकारते हैं? बोलो माँ, क्या यह सब देखकर और इन सब बातों को सुनकर तुम्हारा दिल नहीं दहल जाता, तुम्हारी आँखें नहीं डबडबा आतीं, तुम्हारा मन व्याकुल नहीं हो जाता? मैं नहीं मान सकता कि ऐसा नहीं होता। माँ कभी हृदयहीन नहीं हो सकती।

माँ, तुम अपने बच्चों की दुखद अवस्था को अच्छी तरह देखो। पाप, दुख-कष्ट, भूख, प्यार की प्यास, ईर्ष्या, स्वार्थपरता और इस सबसे अधिक धर्म का अभाव, इन सबने मिलकर उनका अस्तित्व नारकीय बना दिया है। अपने पवित्र सनातन धर्म की दुर्दशा पर भी दृष्टि डालो। देखो कि किस प्रकार वह लुप्त होता जा रहा है। श्रद्धाहीनता, नास्तिकता और अंधविश्वास उसे पतन की ओर ले जा रहे हैं और कुरूप बना रहे हैं। इतना ही नहीं, आजकल धर्म के नाम पर इतने पापकर्म हो रहे हैं, पवित्र स्थानों में इतना अधर्म फैला है कि शब्द उसका वर्णन नहीं कर सकते। आप पुरी के पंडों की दुर्दशा देखिए, यह कैसी लज्जाजनक स्थिति है! कहाँ तो हमारे प्राचीन काल के पवित्र ब्राह्मण थे और कहाँ आज के पाखंडी ब्राह्मण! आज जहाँ कहीं भी थोड़ा बहुत धर्माचरण होता है, वहाँ कट्टरता और पाप हावी हो जाते हैं।

बड़े दुख की बात है कि हम क्या थे और क्या हो गए हैं। हमारा धर्म कहाँ से कहाँ पहुँच गया। माँ, इन सब बातों को सोचकर तुम्हें बेचैनी नहीं होती, क्या तुम्हारे हृदय में पीड़ा से हाहाकार नहीं मच जाता?

क्या हमारा देश दिनों-दिन और अधिक पतन के गर्त में गिरता जाएगा, क्या दुखिया भारत माता का कोई एक भी पुत्र ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह से अपने स्वार्थ को तिलांजलि देकर अपना संपूर्ण जीवन माँ की सेवा में समर्पित कर दे?

बोलो माँ, हम कब तक सोते रहेंगे? हम कब तक अनावश्यक चीजों को लेकर खिलवाड़ करते रहेंगे? क्या हम अपने देश के रुदन के प्रति अपने कान बंद रखेंगे? हमारा प्राचीन धर्म मृत्यु शैया पर है, क्या हमारा हृदय अब भी नहीं पिघलेगा?

कोई कब तक हाथ पर हाथ रखे अपने देश और धर्म की इस दुर्दशा को देखता रहेगा? अब और प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। अब और सोने का समय नहीं। हमको अपनी जड़ता से जागना ही होगा, आलस्य त्यागना ही होगा और कर्म में जुट जाना होगा। लेकिन कैसा दुर्भाग्य है कि भारत माता की बहुत कम ऐसी संतानें हैं, जो स्वार्थपूर्ण युग में अपने निजी हितों का पूरी तरह से त्याग कर सकें और माँ की सेवा के लिए समर्पित हो सकें। माँ, क्या आपका यह बेटा इसके लिए तैयार हो पाया है?

अगर कोई भी अपने बच्चे से कहे कि तुम अपने आप से संतुष्ट रहो तो इस पर कोई क्या कह सकता है? ऐसा बच्चा अवश्य ही बहुत अभागा होगा, और ऐसी स्थिति में यह निश्चित है कि आज आशा नहीं रह जाएगी। इस स्थिति में पछतावे के सिवा और कुछ हाथ न लगेगा। अगर यह बात सही है, अगर पुनरुद्धार की सभी आशाएँ मिट चुकी हैं, अगर हमें हाथ पर हाथ रखे बैठे रहना है और इस अधःपतन और कष्ट को केवल देखते रहना है तो यह सब परेशानी किसलिए? अगर मुझे अपने जीवन से अधिक कुछ नहीं प्राप्त करना है, तो मैं जीवित ही क्यों रहूँ?

मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि मैं संपूर्ण जीवन दूसरों की सहायता में बिता सकूँ। मुझे आशा है कि वहाँ सब कुशल हैं। यहाँ हम सानंद हैं। कृपया मेरा प्रणाम स्वीकार करें और इस पत्र का उत्तर अवश्य दें।

सदैव आपका प्रिय पुत्र

सुभाष

बाबू राजेंद्र प्रसाद का राँची से लिखा पत्र

बिड़ला हाउस, राँची

18 जुलाई, 1939

प्रिय सुभाष बाबू,

बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित प्रस्तावों का विरोध करने की आपकी कार्यवाही के कारण नाजुक एवं कठिन स्थिति पैदा हो गई है। जैसा कि 09 जुलाई की बैठकों के पूर्व मैंने अपने वक्तव्यों में स्पष्ट किया था, यदि उपसमितियाँ तथा पदाधिकारी, जिनका कर्तव्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा कांग्रेस के प्रस्ताव को मानना एवं कार्यान्वित करना है, ऐसा करने की बजाय विरोध एवं प्रदर्शन करने लगे तो कांग्रेस संस्था को कार्य करना असंभव हो जाएगा। ऐसी गतिविधियों के विषयों में स्वयं मेरा मानना है कि ये न केवल अनुशासन नष्ट करने वाली हैं, अपितु कांग्रेस के भविष्य के लिए भी गंभीर परिणामों से भरी हैं। अतः मैं ये सारी बातें वर्किंग कमेटी के सम्मुख विचारार्थ रखूँगा, जिससे वह उचित कार्रवाई-अनुशासनात्मक अथवा अन्य-जैसा ठीक समझे, करें। किंतु कमेटी के सामने आपकी कार्यवाही का स्पष्टीकरण और आपका दृष्टिकोण रखा जा सके, इसलिए आग्रह करता हूँ कि यह शीघ्र मुझे भेजने की कृपा करें।

आपका

राजेंद्र प्रसाद

श्री सुभाष चंद्र बोस,
382, एलगिन रोड, कलकत्ता

संत सहजोबाई की गुरुभक्ति का समाजशास्त्रीय निहितार्थ

पार्था चटर्जी के अनुसार, भारत में लोकप्रिय धर्म कभी भी पूरी तरह धर्मशास्त्रों के धर्म की पूर्ण अनुकृति नहीं रहा। श्रद्धावानों ने अपनी-अपनी समझदारी के अनुसार धर्मशास्त्रों को समझा-समझाया और उनका पालन किया। बहुत सारी ऐसी परंपराओं का आविष्कार भी किया जिनका धर्मशास्त्रों में विवरण नहीं मिलता। रॉबर्ट रेडफील्ड ने लोकप्रिय परंपराओं को दो भागों में बाँटा—ग्रामीण तथा आदिवासी। उनके अनुसार, इन दोनों प्रकार की लोकप्रिय परंपराओं को शहरी सांस्कृतिक अभिजात्य वर्ग ने एकत्र कर उनको परिष्कृत, परिमार्जित और युक्तिसंगत बनाकर मुख्यधारा की परंपराओं का निर्माण किया। भारतीय योग दर्शन में अनुभव को केंद्र में

रखा गया है और भक्ति को योग साधना का ही एक प्रकार माना गया। भक्ति योग में चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए आराध्य के प्रति प्रेम की व्यवस्था की गई है। यह आराध्य सगुण अथवा निर्गुण हो सकता है।

संतों की रचनाओं के संकलन के साथ-साथ एक और परंपरा आरंभ होती है। कुछ विद्वान भक्त कवियों की जीवनी लिखते हैं जिनमें यह साबित करने का प्रयास किया जाता है कि अपनी भक्ति के कारण संतों में चमत्कारी शक्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं। चमत्कार संबंधी आग्रह महाराष्ट्र में अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है, पर कमोबेश यह अन्य क्षेत्रों में भी उपस्थित रहता है।

आंदोलन के समाजशास्त्रीय सिद्धांतकारों का मानना है कि कोई समुदाय संघर्ष के लिए तब उद्यत होता है जब उसे सापेक्षिक तृप्तिहरण की अनुभूति होती है। जाति आधारित पारंपरिक भारतीय समाज में धार्मिक अधिकारों को लेकर तृप्तिहरण की स्थिति आरंभ से ही बनी रही। प्रकारांतर से यह भी कहा जा सकता है कि इस आंदोलन ने धार्मिक आक्रोश का शमन करने का उपक्रम किया। इस उपक्रम में नए शास्त्र गढ़े गए और नई लोकप्रिय परंपराएँ उभरीं जो संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय परंपराओं से अलग थीं। इनमें से एक परंपरा गुरुभक्ति की भी थी।

धर्मशास्त्रों और भक्ति साहित्य में महिला विदुषियों एवं संतों का भी योगदान रहा, यद्यपि इनकी संख्या सीमित ही रही। भक्त संतों में दक्षिण भारत की अंदाल तथा राजस्थान की मीराबाई विख्यात हैं। राजस्थान की ही संत सहजोबाई के योगदान की विवेचना उतनी ही अवश्यंभावी है जितनी कि मीराबाई की, क्योंकि लोक भाषा 'दुंदाड़ी' में काम करने के कारण ऐसे संतों की पर्याप्त चर्चा नहीं हो पाई है।

यहाँ सहजोबाई की प्रकाशित रचनाओं की पाठ व्याख्या की गई है। इस कार्य के

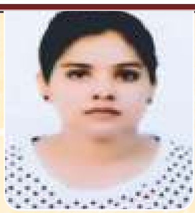

मधु सिंह

शिक्षा : मेरठ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, वर्तमान में शोध छात्रा।

लेखन : वर्ष 2019 के प्रयागराज कुंभ में एक प्रोजेक्ट के दौरान नेत्र कुंभ में कार्य किया। नेत्र कुंभ में कार्य करते हुए विभिन्न राज्यों से आए नेत्र रोगियों के साक्षात्कार और सर्वेक्षण के आधार पर लिखी गई पुस्तक 'कुंभ में नेत्र कुंभ' प्रकाशित हो चुकी है। मधु सिंह शोध के साथ-साथ लेखन का कार्य भी कर रही हैं।

संपर्क : मोबाइल– 7309866056

ईमेल– madhugbp@gmail.com

लिए सहजोबाई के प्रकाशकों एवं आलोचकों के साक्षात्कार का भी प्रयोग किया गया है। मूलतः बेलवीडियर प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'सहज प्रकाश' नामक पुस्तक का पाठ विश्लेषण किया गया है।

सहजोबाई का जन्म धूसर भार्गव कुल में 15 जुलाई, 1725 को दिल्ली के 'परिक्षितपुरा' नामक स्थान पर हुआ। सहजोबाई को कविता पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त हुई। इनका एकमात्र वाणी ग्रंथ 'सहज प्रकाश' उपलब्ध है। सहजोबाई को '18वीं सदी की मीरा' कहा जाता है। गुरु चरणदास ने सहजोबाई को अष्टांग योग, नवधा भक्ति का ज्ञान दिया तथा योगाभ्यास की विधि बताई। सहजोबाई ने पाँच वर्षों तक अखंड समाधि में रहकर साधना की। सहजो समाज में रहकर समादृत हुई। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस काल में ये संत बनीं, उसमें न तो विधवा महिला को जीने का अधिकार था, न किसी महिला के आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने का प्रावधान था अर्थात इनका जीवन अपने आप में एक प्रकार का विद्रोह था।

सहजोबाई की गुरुभक्ति

सहजोबाई के आराध्य राधाकृष्ण हैं, किंतु इनकी गुरुभक्ति से संबंधित रचनाएँ विशेष लोकप्रिय हैं। वैसे तो भक्ति आंदोलन के सभी संत (सूरदास को छोड़कर) गुरुभक्ति की परंपरा का निर्वाह करते दिखाई देते हैं, पर इनकी गुरुभक्ति में तीन अलग-अलग प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। उत्तर भारत में भक्ति परंपरा के सर्वाधिक लोकप्रिय संत गोस्वामी तुलसीदास अपने आराध्य के समक्ष गुरु को अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण पाते हैं। विनय पत्रिका में वे आराध्य से द्वंद्व की स्थिति में सभी सामाजिक संबंधों का परित्याग कर देने की सलाह देते नजर आते हैं—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि भये मुद मंगलकारी॥

गुरुभक्ति की दूसरी प्रवृत्ति के सूत्रधार कबीरदास हैं जिनके लिए गुरु और आराध्य लगभग समकक्ष खड़े नजर आते हैं।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो गोविंद दियो बताय॥

कबीर के गुरु स्वयं ही आराध्य को श्रेष्ठ बताते हैं। आराध्य श्रेष्ठ है क्योंकि गुरु ने ऐसा कहा है। पर कबीर का गुरु इतनी सरलता से समझ में आने वाला नहीं। वे गुरु-हरि के द्वंद्व को अनुभव और व्यावहारिकता की कसौटी पर कसते हैं—

कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर॥

जब हम सहजोबाई के गुरु को देखते हैं तो हमें एक अलग आख्यान प्राप्त होता है। सहजो का गुरु उनके आराध्य से भी बड़ा है। इसलिए नहीं कि वह हरि के रूठने पर आपकी समस्या का निदान करता है, बल्कि इसलिए कि वह हरि के द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं से निजात दिलाता है। वह हरि द्वारा रचित मायाजाल को तोड़ता है—

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु को सम हरि को न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहिं। गुरु ने आवागवन छुटाहिं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लईं छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटुंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥

तुलसी, कबीर और सहजो की ज्ञान मीमांसा अलग-अलग है। तुलसी के लिए ज्ञान समाज केंद्रित है और उनका आराध्य समाज के लिए एक आदर्श की व्यवस्था करता है। अतः आराध्य की भक्ति सामाजिक मूल्यों के लिए प्रतिबद्धता का निर्माण करती है। यह भक्त और समाज दोनों को अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर ले जाती है। इसके लिए वह रामकथा का प्रयोग करती है। रामकथा का पूरा आख्यान भक्तों की विजय से भरा पड़ा है। राम अपने भक्तों का उद्धार करते हैं। यह आस्था भक्तों को मर्यादित आचरण करने को बाध्य करती है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो तुलसीदास की सामाजिक व्यवस्था व्यवहारवादी है जिसमें सत्कर्मों के लिए पुरस्कार और दुष्कर्मों के लिए दंड की व्यवस्था है।

सहजोबाई की दुनिया में मोक्ष का पुरस्कार और पुनर्जन्म का दंड अवश्य है, पर इसके अतिरिक्त किसी और दंड या पुरस्कार की व्यवस्था नहीं है। उनका आराध्य प्रेम का पात्र है, पर कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं बनाता। सामाजिक समानता उनका सरोकार है, पर वे इसके लिए तर्क का सहारा नहीं लेतीं, बल्कि अधिकारों की व्यवस्था करती हैं। उनका तर्क यथार्थ की सीमा लाँघकर कबीर की तरह रहस्यवाद में प्रवेश नहीं करता। उनके अनुभव में मीरा की तरह का चमत्कार दिखाई नहीं देता, बल्कि चमत्कार भी गुरु से ही जुड़ा मिलता है। उनकी सामाजिक व्यवस्था में गुरु केंद्र से निकलकर आधार पर आ जाता है—

गुरु मग दृढ़ पग राखिये, डिगमिग डिगमिग छाँड।
सहजो टेक टरै नहीं, सूर सती जो माँड॥

सहजो की सामाजिक व्यवस्था यथार्थवादी है। वे अपने श्रोता को सीधे संबोधित करती हैं और उसे सज्जन और दुर्जन का भेद बताती हैं। ऐसा करते समय वे अन्य संत कवियों से ज्यादा विस्तार में जाती हैं। सहजो की सफलता उनकी सहजता में निहित है। उनके काव्य में समाज को संगठित करने की बेचैनी स्पष्ट दिखाई देती है।

सहजो के गुरुभक्ति की सामाजिकता को समझने के लिए उस ऐतिहासिक कालखंड को समझना आवश्यक है जिसमें वे धर्म-प्रचार

कर रही थीं। यह कालखंड रामचंद्र शुक्ल तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी के भक्तिकाल के कालखंड से अलग था। रामचंद्र शुक्ल का भक्तिकाल अनिवार्यतः मुगलकालीन (1375-1700 ई.) था और उनका विवेचन अनिवार्यतः एक राष्ट्रवादी परियोजना थी जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी की धर्मनिरपेक्षता (राधा-कृष्ण के बिंबों का प्रयोग) आकर्षण का केंद्र थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रोजेक्ट भी राष्ट्रवादी ही था, किंतु वे अनेकता में एकता के सूत्र ढूँढ़ रहे थे। उनके लिए इस बात का महत्व अधिक था। अतः सहजो का यह कहना कि "गुरु न तजूँ पै हरि तज डारूँ" एक नई नैतिकता प्रस्तुत करता है, जिसमें गुरु के माध्यम से राधाकृष्ण की भक्ति पर आरोपित यौनिकता को समाप्त कर दिया जाता है।

सहजोबाई के जन्म से पूर्व मराठाओं और पेशवाओं का उदय हो चुका था और 1761 में पानीपत में हिंदू बादशाही की परीक्षा होनी बाकी थी, अर्थात 18वीं सदी की पूवार्द्ध का हिंदू समाज एक ऐसा विजित और हताश समाज नहीं रह गया था जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "अपनी वीरता के गीत न तो गा सकता था, न सुन सकता था।" इस कालखंड में वह सत्ता के लिए संघर्षरत समाज था और उसका साहित्य अब वह साहित्य नहीं रह सकता था जिसे हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक "हतदर्प, पराजित जाति की संपत्ति" कहा है। इस साहित्य के जिम्मे समाज को संघर्ष और सत्ता के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी आ चुकी थी और इसके लिए समाज को संगठित करना आवश्यक था।

चरणदासियों के संगठन का प्रमाण उनके द्वारा रचित प्रचुर साहित्य है जिसमें सहजोबाई के अतिरिक्त कई संतों का कार्य सम्मिलित है। इस संप्रदाय में महिला संतों की भागीदारी अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन भक्ति-आधारित संप्रदायों से अधिक थी।

संत चरणदास ने 1839 ई. में जब समाधि ग्रहण की, तब उनके लगभग सभी 52 शिष्य उपस्थित थे, लेकिन उन्होंने किसी को भी अपना उत्तराधिकारी नहीं नियुक्त किया। उनकी समाधि के बाद संगठन पर उत्तराधिकार को लेकर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसमें सहजोबाई सफल हुईं। यह उस काल के लिए एक असाधारण स्थिति थी। इस स्थिति पर मत प्रकट करते हुए प्रो. मेधा कहती हैं—"इस तरह सहजोबाई गुरु की मध्यकालीन धारणा को उलट देती हैं। गुरु की मृत्यु के बाद उनकी गद्दी के लिए संघर्ष करती हैं। न्याय न मिलने की सूरत में अदालत जाती हैं। सहजोबाई धर्मसत्ता और पितृसत्ता को एक साथ चुनौती देती हैं। उत्तर भक्तिकाल में उनकी उपस्थिति 19वीं सदी में निर्मित नई पितृसंरचना द्वारा रचित 'अखिल भारतीय स्त्री की छवि' का अतिक्रमण करती है और संभवतः इसी कारण अन्य भक्त कवियों की मानिंद भावसंपन्न कविता रचने के बावजूद, विद्रोही जीवन जीने के बावजूद, हिंदी साहित्य के इतिहास में लेखन में उन्हें उचित स्थान नहीं दिया गया और इस तरह लोक और शास्त्र किसी ने सहजोबाई को अपने यहाँ यथायोग्य स्थान नहीं दिया।"

प्रो. मेधा के शब्दों में आधुनिक समाज की सच्चाई है क्योंकि हिंदी का इतिहास लेखन स्वयं एक परवर्ती और आधुनिक घटना थी। उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण से देखें तो लोकप्रिय धर्म के इतिहास से सहजोबाई को कभी मिटाया नहीं जा सकता क्योंकि लोक स्वयं को शास्त्र से व्यक्त नहीं करता। वह स्वयं को पुनः सृजित करता है (पियरे बोर्दू्यू)।

भक्ति आंदोलन का कालक्रम अत्यंत विस्तृत है। इस आंदोलन के कई लक्ष्य थे। संतों ने अपने-अपने तरीके से कुछ लक्ष्यों को चुनकर उन पर अपना ध्यान केंद्रित किया। मूल समस्या वंचितों के धार्मिक अधिकारों की स्थापना ही था, पर इसके लिए विविध प्रकार के प्रयास और प्रयोग किए गए। कुछ संतों ने विसंगतियों का उद्घाटन किया, कुछ ने वैकल्पिक व्यवस्था का प्रावधान करने का प्रयास किया और कुछ ने तत्कालीन व्यवस्था में ही सुधार का प्रयास किया। संत कवियों का एक अपना अलग श्रोता वर्ग था जिसके माध्यम से वे वृहत्तर समाज से जुड़ते थे। सहजोबाई ने आराध्य के साथ-साथ गुरुभक्ति का भी प्रचार-प्रसार किया। यह तत्कालीन रूढ़िवादी समाज के लिए एक नई परंपरा थी कि एक अविवाहित महिला किसी पुरुष की भक्ति करे। इस प्रकार सहजो का जीवन अपने आप में एक विद्रोह था। सहजो के काव्य में रहस्यवाद, चमत्कारवाद या आदर्शवाद की झलक है। उसकी जगह वे धर्म और समाज की यथार्थवादी व्याख्या करती नजर आती हैं। संत कवियों ने समाज को संगठित करने का कार्य किया और आधुनिक धर्मसुधार आंदोलनों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

नेपथ्य का अभिनेता

यद्यपि उसे पहले भी पचासों बार देख चुका हूँ, किंतु उस दिन देखकर चिहुँक-सा उठा। चकित हो गया। लगा, जैसे बिना मौसम के कोई फूल या फल देख रहा हूँ। सावन-भादों के किचकिच में लगातार बारिश में ई कहाँ से आ गया? क्यों?

मैं ही नहीं, उसे देख सभी परिचित अकचकाकर रुक जाते हैं। कोई-कोई उसके मेज के निकट जाकर कुछ पूछ भी लेता है और मैं यह भी देखता हूँ कि वह घोर अनाटकीय ढंग से छोटा-सा उत्तर दे देता है। मुझे यह समझने में कोई गलती नहीं हुई कि लोग उसे फॉरबिसगंज की इस छोटी-सी चाय की दुकान की एक बाँहवाली कुरसी पर बैठा देखकर क्यों कुछ देर के लिए अकचकाकर रह जाते हैं।

मैंने मन-ही-मन अटकल लगाई—प्रायः 30-31 वर्ष पहले, इस व्यक्ति को पहले-पहल देखा था—सन् 1929 में। उसी साल पहले-पहल गुलाबबाग मेला में इतना सटकर हवाई जहाज देखा था कि वह सन्-ईस्वी अभी तक झक-झक मन में याद है। सन् 1929 में मैं आठ-नौ वर्ष का था। उसी वर्ष गुलाबबाग मेला में कलकत्ता की मशहूर थियेटर कंपनी आई थी और लोगों की अपार भीड़ जमा हुई थी—तिल धरने की भी जगह नहीं थी। मंच पर ही गाड़ी आती-जाती थी—इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुआँ उगलती हुई और लाल-पीली रोशनी में अनेक परियाँ नाचती हुईं...!

जीवन में पहले-पहल थियेटर देखकर कितना उत्तेजित हो गया था—आज भी वह दिन अभी तक मन में है। कितना आश्चर्यजनक!

किंतु जब स्कूल खुला, तो सहपाठी बकुल बनर्जी ने मेरे मन को छोटा कर दिया था। यद्यपि वह भी उन दिनों आठ-नौ वर्ष का ही था, किंतु बहुत ही तेज, जन्मजात आर्ट क्रिटिक। उसके कथनानुसार, इस नकली कंपनी में पिछले साल नागेसरबाग मेला में आई असली कंपनी के निकाले हुए सब लोग थे, किंतु बकुल मुझे उदास देखकर बोला था—"तब भी एक बात है इस कंपनी में—जिस मानुष ने रेलवे पोर्टर का पार्ट किया हाई, वह नागेसरबाग मेला में आया हुआ कंपनी में भी यही पार्ट करता था, यानी वेटिंग रूप में सोए हुए लड़िका को मारता था, छुरा से...उसको तो नकली नेही कहने सोकते।"

आज भी मेरे मन में उस समय की सभी बातें हैं...गुलाबबाग मेला...पंजाब मेल का रेलवे पोर्टर...लड़के का खून...बकुल की बातें...

करीब चार या पाँच वर्ष उपरांत सिंहेश्वर मेला में आई हुई उमाकांत झा कंपनी में इस व्यक्ति को पुनः देखा था। 'बिल्वमंगल' नाटक में चिंताबाई की मजलिस में भोथिया के बाबाजी के भेष में—'काया का पिंजरा डोले रे, साँस का पंछी बोले' गाता हुआ, बड़ा ही सुरगर कंठ था। गुलाबबाग वाली कंपनी में लड़के की हत्या करने वाला, माने हत्यारे का पार्ट करने वाला,

फणीश्वर नाथ रेणु

(04 मार्च, 1921–11 अप्रैल, 1977)

जन्म : ग्राम औराही हिंगना, निकट फॉरबिसगंज, जिला अररिया, बिहार।

शिक्षा : उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। इंटरमीडिएट के बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में भी हिस्सा लिया। वे हिंदी भाषा के जाने-माने साहित्यकार थे।

पुरस्कार/सम्मान : उनके पहले उपन्यास 'मैला आंचल' के लिए उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

साहित्यिक कृतियाँ : उपन्यास—मैला आंचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड; कथा-संग्रह—एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमी।

बाबाजी के गेरुआ वस्त्र में। अपनी बोली वह अधिक देर तक नहीं छिपा सका—मैं भट्ट से तुरंत पहचान गया। किंतु जब वह पारसी नौटंकी के एक दृश्य में कविता पढ़ रहा था—"मृदंग कहै धिक है, धिक है...मंजीर कहै किनको-किनको!" ...तब हाथ नचाय के गणिका कहती—"इनको-इनको-इनको!"... उस समय मुझे तनिक भी शंका नहीं रह गई। खूब फरिछा कर पहचान गया था बाबाजी को—वही था, जो गुलाब मेला कंपनी में, वेटिंगरूम में सूतल लड़के के छुरा भोंकने के पहले काँपते हाथ और थरथराते छुरे को देख, पागल जैसा बड़बड़ा उठा था—"क्यों मेरे हाथ! तू क्यों थरथरा रहा है! तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है। मत काँप मेरे खंजर...वक्त बरबाद मत कर! शिकार...सोया है चादर तानकर! ले, तू भी अपना काम कर!" बस की डुग्गी पर बड़ी जोर से चोट पड़ी थी, सभी हड़बड़ा गए थे—यह सब-कुछ मेरे मन में है।

उसके बाद फिर तीसरी बार—आद्याप्रसाद की नाटक कंपनी के 'श्रीमती मंजरी' खेला में अंग्रेज जज का भेष बनाकर मेज पर हथौड़ा ठोंककर शांति स्थापित करता हुआ यह व्यक्ति बोला था—"वेल मोंजरीबां! हाम टुमको सिड़ीमटी मोंजरी का खेटाव डेटा हाइ। आज से टुमको सिड़ीमटी मोंजरी बोलेगा। हम बोलेगा, साब बोलेगा, समझा?" और इस दृश्य के उपरांत कुछेक क्षणों में वही गीत गाता हुआ स्टेज पर आया था—"काया का पिंजड़ा डोले रे" अपनी उसी पुरानी तर्ज में।

मुझे इसे पहचानने में कहीं गलती नहीं हुई। सब जगह उसे चीह्न गया।

वह दुकान की कुरसी पर बैठा था अवश्य, पर था अन्यमनस्क, उदास, उखड़ा हुआ, अपने में खोया हुआ। बादलों की झड़ी वह बहुत देर से एकटक देख रहा था। वह... वह...हत्यारा पोर्टर, बाबाजी...अंग्रेज जज... उपदेशक...सिपाही...डाकू...अंधा...फकीर... तथा आदि, आदि, आदि—सब एक ही व्यक्ति...एक ही व्यक्ति।

इतने समय के बाद मेरी नजर उसकी पहनी हुई बुशर्ट पर पड़ी। कार्टून की छाप मिट रही थी, मैल जम रहा था। नई डिजाइन की टूटी चप्पल। वह उचककर गंभीर दृष्टि से चायवाले की ओर ताकते हुए बोला—"एक इधर भी..." उसकी बोली सुनकर यह समझने में रत्ती-भर भी भ्रम नहीं रहा कि जो हत्यारा पोर्टर, या दहलाने वाला भयंकर डाकू, या रोबीला अंग्रेज जज, या शांत उपदेशक आदि का पार्ट करता था, अब बूढ़ा हो गया है।

> **"खूब फरिछा कर पहचान गया था बाबाजी को—वही था, जो गुलाब मेला कंपनी में, वेटिंगरूम में सूतल लड़के के छुरा भोंकने के पहले काँपते हाथ और थरथराते छुरे को देख, पागल जैसा बड़बड़ा उठा था—"क्यों मेरे हाथ! तू क्यों थरथरा रहा है! तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है। मत काँप मेरे खंजर...वक्त बरबाद मत कर! शिकार...सोया है चादर तानकर! ले, तू भी अपना काम कर!"**

याद आया—फॉरबिसगंज मेले की एक थियेटर कंपनी के कुछ एक्टरों के पीछे बहुत देर से घूम रहा था। एक पान की दुकान पर खड़े हुए, पीछे मैं भी खड़ा हुआ। उस दल में काफी लोग थे। लैला, मजनू और फरहाद, राजा, डकैत के हाथ से राजकुमारी को छुड़ाने वाला राजकुमार और प्रयोजन पड़ने पर जल्लाद बनने वाला और सबके साथ यह 'काया का पिंजड़ा' गानेवाला। मुझे पीछे खड़ा देखकर यह बोला था, "क्यों बे छोकरे, इस तरह क्यों घूम रहा है पीछे-पीछे? पॉकेट मारेगा क्या?"

उस छोटी अवस्था में भी मेरा मन समझ गया था कि आत्मसम्मान पर आघात पड़ा है। अहं जाग गया। कड़ाका उत्तर दिया, "आपके पॉकेट में है ही क्या, जो कोई मारेगा?"

"क्यों?" वह अप्रतिम होकर बोला था, "तू यह कैसे जानता है कि मेरा पॉकेट खाली है?"

यद्यपि उन दिनों मैं अपने स्कूल की सबसे ऊपर की क्लास में पढ़ता था और मास्टर साहब के आदेशानुसार प्रत्येक अपरिचित से अंग्रेजी में बात करने का अभ्यासी हो चुका था, किंतु फिर भी मैंने खड़ी बोली में उत्तर दिया—"क्यों रात जो भीख माँग रहे थे—दाता तेरा भला हो!"

सब ठठाकर हँस उठे थे और बोले थे—"छोकरा तेज है।"

अब मुझे अंग्रेजी झाड़नी पड़ी थी—"यू सी मिस्टर—रेलवे पोर्टर-एक्टर, डोंट से मी छोकरा, आई एम मैट्रिक स्टूडेंट, यू नो?"

इतनी पुरानी बात याद आने से मेरे होंठों पर हँसी फैल गई। प्रश्न उठा मन में कि अभी यह किस कंपनी में काम करता है? क्या अब भी यह उसी तरह रोबीला डायलाग बोलता है? वैसे ही वेटिंगरूम में लड़के पर खंजर चलाता है, वैसा ही...वैसा ही...

मेरा ध्यान भंग हुआ। उसकी चाय खत्म हो गई थी। वह मेरी मेज से सटकर खड़ा हो गया था और पूछा, "आप मुझे पहचानते हो, सेठ?"

उसकी बाँह पकड़कर बैठाते हुए बोला—"मैं सेठ नहीं हूँ। खालिस आदमी हूँ। कहिए, आजकल किस कंपनी में हैं? इस बेमौसम में आपको इस इलाके में देखकर मुझे काफी आश्चर्य हो रहा है।"

"साहेब, अब कहाँ की कंपनी और कैसा थियेटर! सबको फिलम खा गया।'' उसने हँसने की निरर्थक चेष्टा की।

"आपने कितनी कंपनियों में काम किया है?"

"साहेब, पंद्रां।" लगा, जैसे उसके मन में सब-कुछ संजोकर रखा हुआ हो। निमिष मात्र के उपरांत मेरी ओर शून्य दृष्टि से ताकता हुआ बोला—"नौ साल की उम्र में पहली बार स्टेज पर उतरा था—क्रिशन के रोल में।"

मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सामने बीते युग का एक शेषांक बैठा है, पारसी थियेटर का एक टूटा हुआ अभिनेता। सिगरेट बढ़ाते हुए पूछा—"तो आजकल क्या करते हैं आप?"

वह एक क्षण चुपचाप मेरी ओर ताकता रहा, फिर सिगरेट सुलगाता हुआ बोला—"क्या करूँगा, साहेब! वह जो किसी शायर ने कहा है कि इश्क ने कर दिया निकम्मा...।" उसने हँसने का असफल अभिनय किया—"दस साल बाद इस इलाके में आया हूँ। क्या नाम बताया लोगों ने—मिथिला देश। साहेब, इस इलाके में नाटक के काफी शौकीन लोग हैं...जाने को तो फिल्म में भी गया। पर जी नहीं लगा।" इतना कहकर कनखी से एक बार इधर-उधर ताककर, फिर दयनीय दृष्टि से मेरी ओर देखता हुआ धीमे स्वर में बोला—"साहेब, एक्सक्यूज मी, फॉर लास्ट टू डेज आई एम हंगरी, वेरी हंगरी। माँगने को हिम्मत नहीं होती किसी से..."

उसका यह अंग्रेजी डायलॉग घोर अनाटकीय था। मैं कुछ कहने को ही था कि चेहरे पर आज्ञा मानने का भाव प्रदर्शित करता हुआ गिड़गिड़ाने के स्वर में बोल उठा—"हुकुम हो, तो कुछ पेश करूँ...अब तो यही एक सहारा बचा है, ड्रामे के पुराने शौकीन मिलते हैं, सुना देता हूँ, जी हलका हो जाता है और कुछ...।" वह अपने अपूर्ण वाक्य को छोड़, कोने में रखी अपनी अटैची कूदकर ले आया। एक काली लुंगी बाहर कर मुँह झाँप लिया। फिर लुंगी का परदा उठाया, तलवार-कट मुँहवाला एक विचित्र चेहरा आया। मद्धिम स्वर में वह बोला—"यह एक उदास-निराश नौजवान प्रेमी का डायलॉग है।" एक बार वह खखसा, पुनः बोलना शुरू किया—"जालिम चपला! यह क्या किया! तुमने मेरे दिल के हजार टुकड़े कर दिए! जालिम! तुमने यह क्या कर डाला, क्या कर डाला, चपला...चपला...चली गई तू चपला। चली गई तू मुझे तड़पता छोड़कर...।" इसके बाद हिचकियाँ लेते हुए वह जो संवाद बोला, वह मैं नहीं कह सकूँगा।

दुकान में लोगों की भीड़ लग गई थी। चारों किनारों से लोग झुक-झुककर देख रहे थे। सबके चेहरों पर एक विचित्रता और कौतूहल का भाव था। किंतु सभी चुप, स्तब्ध! बाहर बादल रह-रहकर गरज उठता था। उसने पुनः अपने चेहरे पर लुंगी का परदा गिरा लिया, मानो अपने को ग्रीनरूम में ले गया हो। इस बार बड़ी-बड़ी मूँछवाला सरदार बनकर बाहर आया। परदा उठा, वह गरजा...क्यों बे बदकार! बता, कहाँ है राजकुमार? कहाँ है, मक्कार की औलाद...!"

हठात् इस जोशीले संवाद की उठा-पटक में नकली दाँत का सेट छिटककर मुँह से बाहर आ गया।

इसी क्रम में उसने दर्जनों मुखड़े बनाए, कितने ही प्रकार के रास-संवाद सुनाए और अंत में टोपी को भिक्षा-पात्र बनाकर लोगों की ओर ताककर बोला—"दाता, तेरा लाख-लाख भला हो, आना-दो-आना...दो पैसे ही सही...।"

मेरा पैर धरती से स्पर्श कर गया। जैसे कहीं थोड़ी चोट लगी हो, एक झटका लगा हो। इस व्यक्ति ने अपनी कला के जादू से कितने वर्ष पीछे धकेल दिया था। मैं पुनः वर्तमान में लौट आया। देखा, बकुल बनर्जी मेरी ओर एकटक ताक रहा है—थोड़ा-थोड़ा किनारे से मुस्कुराता हुआ।

बकुल उससे जोर से पूछ बैठा—"क्यों एक्टर मोशाय, काल इतना मेहनोत से चोन्दा कर दिया, सो सब एक ही रात में भट्ठी में फूँक दिया? वाह रे मोशाय!" जन्मजात आर्ट-क्रिटिक मेरा सहपाठी बकुल बनर्जी आज भी कला और कलाकार को पहचानने का धंधा उसी प्रकार करता है। सब एक दिन जैसा ही रहा वह! मेरी ओर ताकता हुआ बकुल बोला—"तू भी इसका बात में फँस गए। मुझसे कल यह कह रहा था—फॉर टू डेज आई एम हंगरी..."

नहीं जानता क्यों, मुझे उस वक्त बकुल की यह बात अच्छी नहीं लगी। उसे चुप रहने का इशारा किया और फुसफुसाकर पूछा—"बकुल, इसकी डोलती हुई काया के पिंजड़े में जो पंछी बोल रहा है, उसकी बोली को सुनकर तुमको कुछ नहीं लगा? ठीक-ठाक बताना...!''

बकुल जैसे अवाक् रह गया हो। निमिष-मात्र स्तब्ध रहा, फिर धीरे से बोला—"कुछ नहीं लागता तो काल्ह ठो सारा दिन क्यों इसके साथ भीख माँगता, चोन्दा तो भीख ही हुई।" उसने एक निःश्वास छोड़ा, फिर कहने लगा—"क्या बताएँ, कैसा लगा? लगा...तुम्हारे अथवा अन्य मित्रगणों के साथ भागकर रात-भर थियेटर देखने गया हूँ, होस्टल से।"

मैंने कहा—"हाँ बकुल, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा।"

इसी बीच वृद्ध एक्टर ने अपने दूसरे, पुराने प्रसिद्ध गीत की पहली पंक्ति आरंभ कर दी थी—

"सुबह हो गई निकल गए तारे—
मुझे छोड़ो चलो मेरे प्यारे!"

हठात् पुनः हम लोगों के मन में मेला का मौसम जगमग करने लगा।

(यह कहानी राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित व भारत यायावर द्वारा संपादित पुस्तक 'फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ' से ली गई है।)

लोक कथाओं की अंत:प्रकृति

मानव को वाणी पहले मिली, लेखनी बाद में। आदिमानव का अधिकांश समय जंगल में बीतता था, जहाँ वह शिकार की खोज करते हुए पशु-पक्षियों के संबंध में बातचीत करता। समय काटने के लिए वह ऐसे जीवों के विषय में भी वार्ता करता, जो उसने प्रत्यक्ष नहीं देखे होते। ऐसे प्रकरणों में उसकी कल्पना मुखर हो उठती।

सभ्यता के अगले पायदान पर पहुँचकर वह मैदानों में जानवर चराते समय और बाद में खेतों की रखवाली करते हुए, मचान पर रातें काटते वक्त, लंबी यात्राओं के दौरान कहानियाँ सुनने-सुनाने लगा। संयुक्त रूप से घर का काम करती औरतें, नीरस कामों में लगे मजदूर, दिन में ठलुआ बैठे लोग, चौपालों में रात्रि में एकत्र किसान श्रम का परिहार करने के लिए या समय काटने के लिए कहानियाँ कहने-सुनने लगे। इस प्रकार गाँवों, चौपालों, गलियों, खेत-खलिहानों, चूल्हा-चौकों और झोंपड़ियों में कही जाने वाली गल्पें लोक साहित्य हो गईं जिससे पहेलियों, कहावतों, गीतों, वीर गाथाओं, आख्यानों और लोक कथाओं का विपुल भंडार बन गया।

सुधीर निगम

जन्म : 07 फरवरी, 1937 फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद)।

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), ए.आई.आई.आई. (मुंबई)।

प्रकाशन : लगभग 300 शोधपरक, ऐतिहासिक-पौराणिक कथा-लेख, कहानियाँ व कविताएँ हिंदी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई उपन्यास, व्यावसायिक पुस्तकों सहित कुल 14 पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9839164507

ई-मेल— nigam_sudhir37@gmail.com

लोक साहित्य गाँवों तक सीमित न रहकर हर स्थान, हर अंचल में फैलकर हर स्तर, हर वर्ग, हर जाति की मौखिक परंपराओं में परिव्याप्त हो गया। इसकी पैठ हिंदू, जैन, बौद्ध, इस्लाम यहाँ तक कि ईसाई वाङ्मय के सभी दर्शनों और वादों में हो गई। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का उद्गम आंचलिक माना जाता है। शास्त्रीय साहित्य ने दार्शनिक और धार्मिक धाराओं के प्रचार के लिए प्रचलित लौकिक आख्यानों का प्रश्रय लेना ठीक समझा।

लोक साहित्य में सबसे रोचक और सशक्त विधा लोक कथा मानी जाती है। संस्कृत भाषा में 'लोक कथा' का शाब्दिक अर्थ 'सर्वप्रिय कहानी' है। लोक कथाओं का सांस्कृतिक विवरण और नैतिक बोध हर नए वाचक के साथ बदल जाता है क्योंकि उनमें स्थान परिवर्तन होने पर नए और स्थानीय प्रसंग जुड़ जाते हैं, विभिन्न कहानियों के टुकड़े मिल जाते हैं तथापि उनका मूल ढाँचा और मुख्य कथानक वही रहता है। यही अपरिवर्तनशीलता इसकी पहचान होती है।

लोक कथाओं में सिर्फ तथ्य ही नहीं होते, अपितु उनमें भाव, अर्थ और बोध भी निहित होते हैं। ये कथाएँ अलग-अलग अवसरों पर सुनाई जाती हैं। कहीं दादा या अम्मा बच्चों को खाना खिलाते समय कथा सुनाती है ताकि बच्चे अपेक्षित मात्रा में भोजन ग्रहण कर सकें, कहीं नानियाँ बच्चों को सुलाते समय कहानियाँ कहती हैं ताकि बच्चों का ध्यान एक ही बिंदु पर केंद्रित हो जाए और उन्हें नींद जल्दी आ जाए। इसी श्रेणी में हम व्रत कथाओं को भी सम्मिलित कर सकते हैं जो धार्मिक अनुष्ठानों जैसे—भाई-दूज, करवाचौथ, वट वृक्ष पूजा आदि के अवसरों पर सुनाई जाती हैं। इन अवसरों पर सुनाई जाने वाली साधारण कथा भी व्रत कथा बन जाती है। अपने देश में सबसे अधिक प्रचलित व्रत कथा सत्यनारायण की है।

किंवदंतियाँ (जो दूरस्थ सत्य घटना का आधार लिए लोक कथाएँ ही होती हैं) और लोक कथाएँ पहले ग्रामवासियों के बीच पनपती हैं फिर प्रचलित और प्रसिद्ध होने के बाद साहित्य में प्रविष्ट होती हैं। आर्य, द्रविड़, कोल और किरात वंश के लोग जब आपस में मिले होंगे, तब उनकी लोक कथाएँ भी एक-दूसरे के घर में घुसने लगी होंगी। विद्वानों का मत है कि बौद्ध जातकों की कथाएँ लोक कथा के स्तर से उठकर साहित्य में पहुँची हैं और फिर वहाँ से पुराणों में प्रविष्ट हो गईं। कदाचित इसी कारण पुराणों और जातकों की कई कथाओं में साम्य दिखाई देता है।

“फादर कामिल बुल्के अपनी ‘राम-कथा’ में बताते हैं कि राम-कथा संबंधी आख्यान काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के सूतों ने आरंभ की। इन्हीं आख्यान काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की। मूल रामायण में सिर्फ 12,000 श्लोक थे। काव्योपजीवी कुश-लव ने श्रोताओं की रुचि के अनुसार रामायण में लोकप्रिय अंश जोड़े। इससे रामायण का कलेवर बढ़ गया।”

माना जाता है कि रामकथा, जो एक सशक्त संस्कृत महाकाव्य का विषय है, मूलतः लोक कथाओं पर आधारित है। फादर कामिल बुल्के अपनी ‘राम-कथा’ में बताते हैं कि राम-कथा संबंधी आख्यान काव्यों की वास्तविक रचना वैदिक काल के बाद इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के सूतों ने आरंभ की। इन्हीं आख्यान काव्यों के आधार पर वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की। मूल रामायण में सिर्फ 12,000 श्लोक थे। काव्योपजीवी कुश-लव ने श्रोताओं की रुचि के अनुसार रामायण में लोकप्रिय अंश जोड़े। इससे रामायण का कलेवर बढ़ गया।

रामायण लिखित और मौखिक रूपों सहित लोक सृजन की मुख्य प्रेरणा रही है जिससे वह परवर्ती काल में तमाम प्रांतीय भाषाओं में रचित काव्यों की धारा के रूप में फूटी। लोक कथाओं की जादुई शक्ति के कारण रामकथा के विषय में जैन और बौद्ध पुराणों में कितनी अद्‌भुत बातों का समावेश मिलता है। लगभग सभी भारतीय भाषाओं में रामकथा काव्य का सृजन हुआ है। वाल्मीकि रामायण पर अवलंबित रहते हुए भी लगभग सभी काव्यों में अनूठे प्रसंग पाए जाते हैं जो जनश्रुतिओं और लोक कथाओं की प्रतिध्वनि कहे जा सकते हैं।

व्यासदेव कृत ‘महाभारत’ का कलेवर भी संप्रति मूल से चौगुना हो गया है। निराशा से आवृत्त मुख्य पात्रों के मनोबल को बढ़ाने, उनकी हीनभावना दूर करके सुप्त शौर्य को जगाने, उनमें नैतिकता, सदाचार, कर्तव्यपरायणता का आधान करके अंतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने के लिए अंतर्कथाओं का प्रश्रय लिया गया है। ये कथाएँ कहाँ से आईं? इसी प्रकार पुराणों की कथाओं का स्रोत क्या है? इसके उत्तर में सबसे प्रबल अनुमान यह है कि देश की जनता में शूरवीर पितरों अथवा भूत-प्रेत के संबंध में जो लोक कथाएँ फैली हुई थीं, वे ही बढ़कर ऊपर आ गईं और साहित्यिक रूप लेकर महाभारत और पुराणों में अंतर्विष्ट हो गईं।

प्रवहमान लोक साहित्य अपने उद्‌गम स्थल तक सीमित नहीं रहता। वह स्वतः प्रसारित होता है, उसका मूल भले ही स्थिर रहे। भारतीय लोक कथाएँ भी देश की सीमाएँ लाँघकर सात समुंदर पार अधिकांश देशों में फैल गईं। कोई नहीं जानता कि कौन-से पासपोर्ट पर ये दूर देश जा पहुँचती हैं और वहाँ के लोक जीवन और साहित्य को प्रभावित करती हैं। इस बात का पुष्ट प्रमाण मिलता है कि जातक, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि की प्रचलित भारतीय कथाएँ, जो स्वयं स्थानीय लोक कथाओं पर आधृत हैं, प्राचीन काल से ही देश के बाहर पहुँचती रही हैं। विदेशी लेखक ईसप, एंडरसन और ग्रिम की गल्प कथाएँ पढ़ने के बाद लगता है कि उनमें से अधिकांश हमारी लोक कथाओं और नीतिकथाओं की पुनर्रचना भर हैं। इसका सबसे सशक्त प्रमाण यह है कि उन कथाओं के वन्यजीव पात्र, जैसे—सिंह, शृंगाल, हाथी, मयूर आदि सभी भारतीय हैं। ईसप की तो प्रत्येक कथा की फलश्रुति मिलती है जो निस्संदेह भारतीय पद्धति है।

कथाएँ जब गढ़ी जाती हैं तो गढ़ने वाले के पास कोई निश्चित साँचा नहीं होता। इसलिए लोक कथाओं में जहाँ एक ओर कसावट होती है, सामंजस्य होता है, वहीं दूसरी ओर वैभिन्न्य भी दिखाई देता है। ऐसे में इन कथाओं के मानक वर्गीकरण की समस्या उत्पन्न होती है। वर्गीकरण के बिना लोक कथाओं या किसी भी विधा की अंतःप्रकृति को, उनकी संरचना को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। इन्हें मोटे तौर पर नारी-पुरुष, पारिवारिक व हास्य, भाग्य, मृत्यु, देवता, राक्षस, चतुर व्यक्ति तथा पशु-पक्षियों की कथाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

जनता के हितों की उपेक्षा करने वाले या राग-रंग में डूबे रहने वाले शक्तिमानों की आँखें खोलने के लिए हर देश की लोक कथाओं में एक स्थायी हास्य पात्र-विदूषक का समावेश कर लिया जाता है। इससे बार-बार इनका परिचय देने की जरूरत नहीं रहती। इसमें से कुछ पात्र वास्तविक जीवन के लिए जाते हैं, परंतु अधिकांश कल्पना-प्रसूत होते हैं। बंगाल के गोपाल भांड या मिथिला के गोनू झा, दक्षिण के तेनाली राम, अकबर के दरबार के बीरबल, रूस के मुल्ला नसरूद्‌दीन, कज़ाख के अलदार कोसे और चीन के आफंती ऐसे पात्र हैं जो अपने बुद्धि-कौशल, चातुर्य, हाजिर-जवाबी से शक्तिमानों को बेबस कर देते हैं। इनकी कथाएँ स्थान परिवर्तन होने पर अलग-अलग नामों से सुनाई जाती हैं।

सभी धर्मों की कथाओं में, जब तक ईश्वर का हस्तक्षेप न हो, भाग्य की गति अटल दिखाई जाती है। इसके विपरीत लोक कथाओं में चतुर व्यक्ति भाग्य को चकमा देते दिखाई देते हैं। कभी-कभी भाग्य के लेख का अक्षरशः पालन तो होता है, पर उसके परिणाम सुखद बना

दिए जाते हैं। सत्यवान-सावित्री की कथा में पति की निश्चित मृत्यु के उपरांत भी सावित्री अपनी चतुराई और धैर्य से उसे यम-पाश से छुड़ा लेती है।

हमारे देश में सबसे पुरानी कथाएँ पशु-पक्षी जगत से संबंधित हैं। 'जातक कथाओं' और 'पंचतंत्र' में ऐसी कहानियाँ भरी पड़ी हैं। 'पंचतंत्र' का अरबी, फारसी, लैटिन में अनुवाद होने पर ये कहानियाँ वहाँ भी लोकप्रिय हो गईं, भले ही उन पशु-पक्षियों का अस्तित्व वहाँ न रहा हो। पशु-पक्षी की कहानियाँ बच्चे बहुत पसंद करते हैं और कहानी के बोध को सहजता से हृदयंगम कर लेते हैं। आजकल पशु-पक्षियों की कहानियों पर चित्र-कथाएँ, टी.वी. धारावाहिक और फिल्में भी बनने लगी हैं। मोगली की कार्टून फिल्म रुडयार्ड किपलिंग की पुस्तक 'जंगल बुक' पर आधारित थी। लेखक मध्य प्रदेश में पैदा हुआ और वहाँ रहता रहा। मोगली का पात्र मध्य प्रदेश के ही 'भेड़िया बालक' के चरित्र पर आधारित है जो 1831 ई. में पकड़ा गया था और

जिसके बारे में लेखक ने बाद में पढ़ा। इस पात्र के अतिरिक्त उपन्यास की कथा लोक कथाओं के काल्पनिक पात्रों पर आधारित है। मोगली पर बनी फिल्म की विश्वव्यापी लोकप्रियता से लोक कथाओं की समाज पर जबरदस्त पकड़ सिद्ध होती है।

तोता कई कथाओं में मुख्य पात्र होता है, जैसे—संस्कृत की 'शुक सप्तति'। फारसी का 'तूतीनामा' हमारे यहाँ 'किस्सा तोता-मैना' के नाम से प्रसिद्ध है। 'पंचतंत्र' में भी तोते की कहानियाँ मिलती हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' में तोते का एक पात्र के रूप में प्रयोग लोक कथाओं से प्रभावित होकर किया गया है। तोता-मैना आदमी की बोली की नकल कर लेते हैं, इसलिए उन्हें कहानियों को गति देने का माध्यम बनाया जाता है। जायसी के 'पद्मावत' में रतनसेन और पद्मिनी को मिलाने का काम हीरामन तोता करता है। एक अन्य कहानी में एक आदमी परदेश जाते समय अपनी पत्नी की शुचिता की रक्षा के लिए अपने तोते को नियुक्त करता है। पति की अनुपस्थिति में जब पत्नी अपने प्रेमी से मिलने के लिए घर से निकलने लगती है तो तोता उसे एक कहानी सुनाकर पूरी रात उलझाए रखता है। जब तक पति वापस नहीं आ जाता, वह पत्नी को इसी प्रकार हर रात कहानी सुनाता रहता है। इसी पद्धति को थोड़े परिवर्तन के साथ 'अलिफ-लैला' में अपनाया गया है।

पात्रों की प्रकृति, चरित्र, महत्ता के आधार पर लोक कथाओं का वर्गीकरण भले ही स्थूल-सा प्रतीत होता हो, परंतु उसमें वैविध्य तो होता ही है। 'अभिप्राय' के आधार पर विश्व के लोक कथा-साहित्य का विश्लेषण यह दिखाता है कि नए अभिप्राय निर्मित करने की कथाकारों की क्षमता आश्चर्यजनक रूप से सीमित है। सीमित अभिप्राय भी हमें लोक कथाओं में नए-नए रूपों में मिलते हैं। देश-विदेश में हमें एक ही कथा के अनेकानेक रूप प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, हम उन अनाथ, उपेक्षित दीन-हीन बच्चों की कथाएँ ले सकते हैं, जिनमें आरंभ में उनके अंतर्निहित गुणों का आदर नहीं किया जाता, किंतु अंत में सफलता का सेहरा उन्हीं के सिर बँधता है। ऐसी कथाएँ संसार भर में लगभग चार सौ भिन्न-भिन्न रूपों में लिखी गई हैं। इससे विदित होता है कि मानसिक भाव-भूमि के धरातल पर विभिन्न मानवीय गुणों में कितनी आश्चर्यजनक समानता है। विश्व के सभी लोक कथाकारों को कुछ 'अभिप्राय' विशेष रूप से प्रिय होते हैं। भाइयों में सबसे छोटा भाई, बहनों में सबसे छोटी बहन और रानियों में सबसे बड़ी रानी कथाकार के प्रिय पात्र होते हैं। कथा के प्रारंभ में छोटे भाई का अनादर होता है, लोग उस पर हँसते हैं, किंतु कथा के चरम-बिंदु तक पहुँचने से पूर्व ही उसे राजपाट, एक सुंदर राजकुमारी और श्रोताओं की सहानुभूति मिल जाती है। राजा की सभी रानियों में से छोटी रानी रूप और यौवनवती होने के साथ ही क्रूर और कुटिल होती है। राजा उसके मोहपाश में आबद्ध होकर अनचाहे बड़ी रानी या राजकुमारों के प्रति अन्याय और अत्याचार करता है, परंतु अंत में परिस्थितियाँ ऐसा मोड़ लेती हैं कि सत्य उसके सामने आता है और वह पश्चाताप करते हुए तिरस्कृत पात्र को सम्मान देता है।

लोक कथाओं का प्रत्यक्ष उद्देश्य श्रोताओं का मनोरंजन करना है। प्रच्छन्न रूप से वे ज्ञानवर्धन भी करती हैं। जब तक लोक कथाएँ मौखिक रूप में रहीं, चरित्र के घटनाक्रम तथा कथानक के तत्वों को समाविष्ट किए वे शुद्धतम रूप में बनी रहीं, मानव जीवन की अनुभूतियों की लोक रुचि और लोक जीवन के मंगल आदर्शों की झलक देती रहीं, सामाजिक कुरीतियों के प्रति समुदाय की मौन मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करती रहीं, परंतु लेखन-कला के विकास के साथ-साथ लिपिबद्ध होने पर उनमें साहित्यिक संस्कार आ गया। 'कथासरितसागर', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'जातक' आदि की कथाएँ अभिप्राय, शैली, कथावस्तु के संघटन की दृष्टि से यद्यपि लोक कथा परिवार की हैं, परंतु साहित्यिक स्वरूप के कारण वह लोक कथा के रूप से दूर जा पड़ी हैं। फिर भी लोक कथाओं के प्रति जनमानस की उत्कंठा और उत्सुकता आज भी पूर्ववत है। कहानी सुनाने वाला थक जाता है, पर श्रोता की जिज्ञासा बनी रहती है।

असम के किसान आंदोलन

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान असम के किसानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। असम के किसानों का आंदोलन अत्यंत प्राचीन है, लेकिन उनके बारे में विधिवत लिखित इतिहास का अभाव है, जिससे लोग असम के किसान आंदोलनों को अच्छी तरह से समझ नहीं पाए।

देश के अन्य भागों की तरह असम में सन् 1933 में अंग्रेजों ने प्रत्येक हल पर कर लगा दिया। यह कर पहले हल पर तीन रुपये और दूसरे हल पर दो रुपये था। प्रत्येक सक्षम शरीर वाले व्यक्ति को उक्त प्रणाली का कर चुकाना पड़ता था। लेकिन यह एकदम असंभव था, इसलिए 1850-51 ई. में इसे वापस लेना पड़ा। लेकिन इसके बाद अंग्रेजों ने पुनः 1861 ई. में किसानों के करों में बेतहाशा वृद्धि कर दी। इस बार बाँस, गन्ना, लकड़ी आदि वन उत्पादों पर कर लगा दिए गए। इस तरह के कराधान से असम के किसान काफी उत्तेजित हो गए। असम के किसानों ने विद्रोह शुरू कर दिया, जिसे 'फुलगुड़ी धावा', 'रंगिया किसान विद्रोह' और 'पथारू घाट रण' के नाम से जाना जाता है।

फुलगुड़ी धावा

यांडाबू संधि के बाद अंग्रेज धीरे-धीरे असम पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो गए। अंग्रेज छल-बल के कौशल से येन-केन-प्रकारेण जनता का दमन करके स्वार्थ के वशीभूत होकर मुनाफा कमाने में लग गए। इसी दरम्यान उनकी निगाह तत्कालीन असम में प्रचुर मात्रा में अफीम की पैदावार होने वाले इलाके—तत्कालीन नगाँव जिले के फुलगुड़ी, रोहा, मोरिगाँव के कुछ इलाके के अलावा शिवसागर, लखीमपुर तथा दरंग और कामरूप जिले के निरीह किसानों पर पड़ी। उक्त इलाके के किसान वृहत पैमाने पर अफीम की खेती करते थे। यहाँ के किसान अन्य इलाके में अफीम का निर्यात करके कम मेहनत में अधिक आमदनी करते थे।

इसी समय असम में चाय की खेती की प्रचुर संभावना देखकर कई अंग्रेज साहबों ने चाय की खेती शुरू कर दी। चाय की खेती में काम करने के लिए भारतवर्ष के अन्य राज्यों यथा बिहार, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, छोटानागपुर आदि से मजदूर लाए गए और उन्हें चाय बागानों में बसाया गया, लेकिन कई तरह की भयंकर बीमारी के चलते मजदूरों की मृत्यु होने के कारण बाहर के मजदूर असम नहीं आना चाहते थे, जिसके कारण यहाँ के चाय बागानों में मजदूरों की कमी हो गई। इसके चलते चाय

सौमित्रम्

जन्म : 09 दिसंबर, 1967, पूर्णियाँ, बिहार।

संप्रति : वरिष्ठ उप संपादक, हिंदी दैनिक 'पूर्वांचल प्रहरी'।

लेखन व प्रकाशन : गज़ल, गीत, कविता (छंदबद्ध व नई शैली) प्रकाशित। अब तक इनकी संबंधों के निशान (कविता संग्रह-2013), संवेदनाओं की बैसाखी (कविता संग्रह-2015), असम के शहीद पत्रकार (असम के शहीद 26 पत्रकारों का जीवनवृत्त-2016) तथा नाविक के तीर (कविता संग्रह-2017) पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8638291082

ई-मेल : pplowerassam@gmail.com

बागान के मालिकों ने अंग्रेज प्रशासकों के सम्मुख प्रस्ताव रखा कि यदि असम के किसानों से अफीम की खेती बंद करवा दी जाए तो अफीम की खेती बंद होने से असम के गरीब किसानों के सामने फाँकाकशी की समस्या उत्पन्न हो जाएगी और वे चाय बागानों में

> **दरअसल किसानों को एहसास हुआ कि अंग्रेज किसानों की भलाई के लिए अफीम की खेती बंद नहीं करवा रहे हैं, बल्कि अब वे सरकारी तौर पर अफीम की खेती करके स्वयं अधिक कीमत पर स्थानीय लोगों में बिक्री करेंगे और यहाँ के लोगों को कम मजदूरी पर चाय बागान में मजदूर के रूप में अंग्रेज रख लेंगे।**

काम करने के लिए बाध्य हो जाएँगे। इसलिए अंग्रेजों ने खेती की जमीन पर अधिक कर लगाकर अफीम की खेती पूरी तरह बंद करवाने के लिए योजना तैयार की। इसके अलावा कृषिगत उत्पाद बाँस, बेंत, लकड़ी आदि पर अतिरिक्त कर वसूलना शुरू कर दिया। सरकार ने घोषणा कर दी कि सरकारी तौर पर अफीम की खेती होगी और असमिया लोगों के बीच अफीम की बिक्री की जाएगी।

हालाँकि कानून लागू करके कुछ महीनों में अफीम की खेती को बंद करने की बात असम के किसान सहन नहीं कर पाए। इसके बावजूद अंग्रेजों के इस कानून को गरीब-निरीह किसानों ने चुपचाप शिरोधार्य कर लिया, लेकिन तत्कालीन नगाँव जिले के फुलगुड़ी, रोहा, मोरिगाँव आदि इलाके के किसान भड़क उठे। दरअसल किसानों को एहसास हुआ कि अंग्रेज किसानों की भलाई के लिए अफीम की खेती बंद नहीं करवा रहे हैं, बल्कि अब वे सरकारी तौर पर अफीम की खेती करके स्वयं अधिक कीमत पर स्थानीय लोगों में बिक्री करेंगे और यहाँ के लोगों को कम मजदूरी पर चाय बागान में मजदूर के रूप में अंग्रेज रख लेंगे। इसी वजह से किसानों ने अंग्रेजों के हाथों से अपनी मातृभूमि को आजाद कराने का निर्णय लिया। इसके साथ ही स्थानीय किसानों ने विरोध करने का मन बनाया। इसके फलस्वरूप 18 अक्तूबर, 1861 को तत्कालीन नगाँव जिले के फुलगुड़ी में फुलगुड़ी सहित रोहा, मोरिगाँव आदि इलाके के किसानों ने एक सभा का आयोजन करके अंग्रेजों द्वारा की गई कर वृद्धि को गणतांत्रिक तरीके से विरोध करने का एक स्वर से निर्णय लिया। लेकिन उक्त सभा के दौरान ब्रिटिश सिपाहियों ने किसानों पर अत्याचार शुरू कर दिया और गोली-बारी करके कई किसानों को गिरफ्तार कर लिया। उक्त घटना में कम-से-कम 40 किसान मारे गए और अनेक किसान जीवन भर के लिए अपंग हो गए। इसे ही 'फुलगुड़ी धावा' के नाम से जाना जाता है।

ध्यातव्य है कि फुलगुड़ी धावा को अंजाम देने के लिए कोई राष्ट्रीय स्तर के नेता नहीं थे। स्थानीय लोगों ने ही अपने स्तर पर इसे अंजाम दिया। इस घटना के प्रमुख नेताओं में लक्ष्मण सिंह डेका सेनापति, रंगबर डेका और चांगबर लालुंग शामिल थे। इन लोगों को नगाँव जेल में फाँसी दे दी गई। इसके साथ ही बाहू कैवर्त, वनमाली कैवर्त, रूप सिंह लालुंग, हेबरा लालुंग, नर सिंह लालुंग और कातयिया लालुंग को देश निकाला की सजा देकर अंडमान भेज दिया गया।

रंगिया किसान विद्रोह

सन् 1826 के 23 फरवरी को ईस्ट इंडिया कंपनी ने यांडाबू संधि के साथ ही असम को अपने अधीन लेने के क्रम में भूमिनीति में कई परिवर्तन किए। सन् 1885 में संपूर्ण भारतवर्ष पर अंग्रेजों का आधिपत्य होने पर देश के अन्य क्षेत्रों के साथ ही असम की प्राकृतिक

संपदा पर और अधिक राजस्व संग्रह करने सहित खजाने में वृद्धि हेतु अतिरिक्त कर लगाकर किसानों पर अत्याचार शुरू हो गया। किसानों पर खजाना वृद्धि के चलते असम के किसान और जागरूक जनता आंदोलन का रास्ता अपनाने को बाध्य हो गई। संपूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों सहित खजाने में वृद्धि करने पर असम के किसान क्षुब्ध हो गए। खजाना वृद्धि के विरोध में कृषक विद्रोह के रूप में असम के विभिन्न स्थानों पर विशेषकर कामरूप जिले के रंगिया, दरंग जिले के पथारू घाट, सर्थेबाड़ी के लाचिमा, बजाली, नलबाड़ी निकटवर्ती राजकदमतल, तामुलपुर, बरमा तथा धर्मपुर आदि इलाके में जनसभाओं का आयोजन किया गया।

कृषक विद्रोह की ज्वाला अन्य क्षेत्रों के साथ ही रंगिया और निकटवर्ती इलाकों में दहकने लगी। सन् 1893 के दिसंबर महीने के प्रारंभ में रंगिया के बाहारघाट चौमुखा में पहली बार जनसभा का आयोजन हुआ था। उक्त किसान विद्रोह का नेतृत्व बरबरी गाँव के ठौथा सत्र के सत्राधिकार प्राणेश्वर देव गोस्वामी कर रहे थे। उनका सहयोग कर रहे थे माछकुची गाँव के अभय चौधरी। उक्त जनसभा में एक हजार से अधिक किसानों ने बढ़ा हुआ खजाना नहीं देने का निर्णय लिया। इसके बाद रंगिया के गुरुकुची निवासी कीर्तिराम लहकर के घर पर एक सभा का आयोजन करके पहली सभा में लिए गए निर्णय से प्रत्येक गाँवों में सभा करके लोगों को अवगत कराया गया।

इसके बाद फिर से सभा का आह्वान किया गया। उक्त सभा में प्राणेश्वर देव गोस्वामी, अभय चौधरी, कीर्तिराम लहकर के अलावा मुरारा गाँव के कृष्ण कलिता, गोरेश्वर के परशुराम बोड़ो और रहमत खलिफा ने रंगिया के वृहत अंचल में इसे प्रचारित करने के लिए फिर से एक जनसभा आयोजित करने का प्रस्ताव रखा।

सन् 1894 के 10 जनवरी को तीन हजार से अधिक लोग रंगिया में एकत्रित हुए। उक्त लोगों ने थाने के सामने धरना-प्रदर्शन किया और सरकार विरोधी जबरदस्त नारेबाजी करके पूरे इलाके को

गुंजायमान कर दिया। जिलाधिकारी ने किसानों के धरना-प्रदर्शन को गैर-कानूनी घोषित कर दिया, लेकिन धरना-प्रदर्शन में शामिल लोगों ने जिलाधिकारी की घोषणा को महत्व नहीं देकर 20 सदस्यीय किसानों के एक दल ने उस पर आक्रमण कर दिया। इसके बाद जिलाधिकारी द्वारा गोली चलाने का आदेश देने के साथ ही गोलियों की बौछार शुरू हो गई। हालाँकि लिखित रूप से उक्त घटना में किसी आंदोलनकारी की हत्या होने का उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी कई लोगों के घायल होने का उल्लेख है। दूसरी ओर लोगों के कथनानुसार उक्त घटना में 17 लोगों की घटनास्थल पर मृत्यु हुई थी, जिन्हें रंगिया थाना की उत्तर दिशा में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया गया था। उसी स्थान पर 'राइजमेल कृषक शहीद भवन' विद्यमान है।

उक्त घटना के बाद जनसभाओं का काम-काज कुछ दिनों तक बंद रहा। उपरोक्त वर्णित नामोल्लेख के अलावा परमानंद भट्टाचार्य, मायाराम काकोती, सितारा के मुक्ताराम कलिता, शौलमारी के बोगा हाज, सेप्टी के रुद्रकांत शर्मा, सापनिया के सत्मल लहकर, जयंतीपुर के जीवनेश्वर बुजरबरुवा, कांतिराम बायन, बरखोला के जननारायण बुजरबरुवा और कुहीराम दास आदि के नेता प्राणेश्वर गोस्वामी थे।

पथारू घाट रण

28 जनवरी, 1894 को भारतीय इतिहास के रहस्यमय अध्याय का दिन था, जब पथारू घाट रण हुआ था। इस घटना की वजह से अंग्रेजों द्वारा चलाई गई गोली से 140 किसान मारे गए थे। मारे गए किसानों में हिंदू, मुसलमान, जनजाति सभी लोग शामिल थे। किसानों का यह बलिदान इतिहास में किसान आंदोलन का एक ज्वलंत उदाहरण है। पथारू घाट रण अंग्रेजों के दमन का एक प्रतीक बन गया। अंग्रेजों की गोली के सामने किसानों को झुकना पड़ा। अंग्रेजों ने असम के सामाजिक-वित्तीय ढाँचे को बदल दिया, जिससे आम लोगों के जीवन में भ्रम पैदा हो गया। राजघरानों से किसानों को काफी सहयोग मिलता था, लेकिन अंग्रेजों की नई प्रशासनिक प्रणाली से यह सब बंद हो गया। अंग्रेजों ने भूमि पर कर बढ़ा दिया। अंग्रेज समय-समय पर भूमि का सर्वे करके भूमि पर कर बढ़ा रहे थे। इससे किसानों की स्थिति अत्यंत खराब हो गई। इससे लोगों में अंग्रेजों के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो गया। इसके बाद किसानों ने तहसीलदार कार्यालय से संपर्क बनाकर बढ़े हुए कर को देने से मना कर दिया।

हजारों लोग पथारू घाट तहसीलदार कार्यालय पहुँचे और अपनी व्यथा सुनाई। दरंग जिला उपायुक्त ने उक्त भीड़ को नियंत्रित करने के लिए तेजपुर से पुलिस की एक टुकड़ी को भेजा। पुलिस की इस टुकड़ी का प्रतिनिधित्व ए.सी. कोम्बर कर रहे थे।

जब प्रबंधन ने किसानों की शिकायत नहीं सुनी तो किसान डाक बंगला जलाने पर उतारू हो गए। लेकिन पुलिस और जनता में नोंक-झोंक होने के बाद मामला किसी तरह शांत हो गया, परंतु इसके बाद अंग्रेजों ने फिर से कर बढ़ाने की कोशिश की, जिससे किसान भड़क उठे।

जब बोगा साहब सशस्त्र सिपाहियों के साथ मैदान में आए तो उपस्थित लोग जबरदस्त नारेबाजी करने लगे और तहसीलदार व कर्मचारीगण वहाँ तमाशबीन बनकर सब-कुछ चुपचाप देखते रहे। लेकिन एंडर्सन साहब ने बिना किसी लिहाज के कहा कि बढ़ाया गया कर हम लोग कम नहीं कर सकते क्योंकि इसे इंग्लैंड की महारानी ने बढ़ाया है।

26 जनवरी, 1894 को इलाके के लोगों ने पथारू घाट में एक जनसभा का आयोजन किया। इस सभा में निर्णय लिया गया कि जब तक कर की समस्या का समाधान नहीं होगा, तब तक किसान कर का भुगतान नहीं करेंगे। दूसरी ओर तहसीलदार भवानी चरण भट्टाचार्य ने किसानों से आग्रह किया कि 28 जनवरी को दरंग जिले के उपायुक्त एंडर्सन आने वाले हैं, इसलिए किसान दो दिन इंतजार कर लें और उपायुक्त एंडर्सन से बात कर लें।

28 जनवरी, 1894 को डाक बंगला के सामने अवस्थित खुले मैदान में पूरे अंचल के लोग आने लगे और दोपहर तक हजारों लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। जब बोगा साहब सशस्त्र सिपाहियों के साथ मैदान में आए तो उपस्थित लोग जबरदस्त नारेबाजी करने लगे और

तहसीलदार व कर्मचारीगण वहाँ तमाशबीन बनकर सब-कुछ चुपचाप देखते रहे। लेकिन एंडर्सन साहब ने बिना किसी लिहाज के कहा कि बढ़ाया गया कर हम लोग कम नहीं कर सकते क्योंकि इसे इंग्लैंड की महारानी ने बढ़ाया है। इस पर भीड़ में उपस्थित लोगों का गुस्सा उबाल खाने लगा। इसके बाद बोगा साहब डाक बंगले की ओर चले गए तो लोगों की भीड़ भी चिल्लाते हुए उधर गई। लेकिन अंग्रेज सिपाहियों ने लोगों को डाक बंगले के अंदर नहीं जाने दिया। इस पर आम लोगों की सिपाहियों के साथ झड़प हो गई। जब मामले ने तूल पकड़ लिया तो दरंग के पुलिस अधीक्षक बैरिंगटन ने सिपाहियों को लाठीचार्ज का आदेश दे दिया। इससे गुस्साई भीड़ ने भी पुलिस पर लाठी-पत्थर आदि से वार कर दिया। इसी दौरान ठग वैद्य या काटा शेख ने पुलिस अधीक्षक के सिर पर हमला करके घायल कर दिया। इसके बाद जिला उपायुक्त ने पुलिस को गोली चलाने का आदेश दे दिया।

इसके बाद बंदूक के ट्रिगर दबने लगे और गोलियाँ चलने लगीं। कितने लोग मारे गए, इस पर किसी भी तरफ के लोगों ने ध्यान नहीं दिया, बल्कि दोनों पक्ष के लोग अपना-अपना काम करते रहे, अर्थात पुलिस गोलियाँ चलाती रही और भीड़ आगे बढ़ती रही। इस गोलीबारी में अंततः भीड़ को पीछे हटना पड़ा। इस गोलीबारी की घटना में काफी लोग मारे गए और काफी घायल हो गए। बाद में

किसी भी व्यक्ति को लाश देखने नहीं दिया गया और वहीं पर चील-कौओं को खाने के लिए छोड़ दिया गया। बाद में अंग्रेजों ने सभी शवों को एक गड्ढा खोदकर गड़वा दिया। हालाँकि बाद में यह पता चला कि इस घटना में 140 लोग मारे गए और 150 लोग गंभीर रूप से घायल हुए। इस पूरी घटना को नरोत्तम दास ने 'डोली पुराण' में कविता के रूप में समाहित किया है, जिसे वहाँ के स्थानीय लोग आज भी गाते हैं।

ध्यातव्य है कि आजादी के बाद पथारू घाट इलाके के जागरूक लोग चाहते थे कि उक्त घटना में शहीद किसानों के नाम भारतीय स्वतंत्रता सेनानी के रूप में शामिल किए जाएँ। आगे चलकर सन् 2001 में असम के राज्यपाल ले. जनरल एस.के. सिन्हा (अवकाशप्राप्त) की आधिकारिक कार्यवाही के बाद भारतीय सेना ने शहीद 140 किसानों की स्मृति में एक समाधिस्थल का निर्माण करवाया। उसके बाद से प्रत्येक वर्ष 29 जनवरी को सेना की रेड हॉर्न डिवीजन की ओर से शहीद किसानों को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है।

इतना कठिन भी नहीं हिंदी को आगे बढ़ाने का रास्ता

इसमें कोई दो राय नहीं कि किसी भी देश के चहुँमुखी विकास में वहाँ की भाषा और बोलियों का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। चाहे उस देश का आर्थिक, औद्योगिक या तकनीकी विकास हो या फिर वहाँ की कला, संस्कृति और सभ्यता का प्रचार-प्रसार। क्योंकि इन सभी क्षेत्रों में काम करने और विकास करने के लिए व्यक्ति को लोगों से संपर्क बनाना होगा और संपर्क बनाने के लिए जरूरत होती है एक सक्षम और सशक्त अभिव्यक्ति की भाषा की, जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को लोगों तक पहुँचा सके, जिसके माध्यम से वह अपनी बात लोगों को समझा सके। इस दृष्टि से हमें आज हिंदी के विकास और उसे आगे बढ़ाने के रास्तों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है।

यद्यपि हिंदी के विकास के लिए देश आजाद होने के पहले से ही प्रयास शुरू हो चुके थे। उसके बावजूद आज भी स्थिति यह है कि हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए प्रयास करने पड़ रहे हैं। 1918 में इंदौर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जनता से कहा था कि हमें अपने सभी कार्यों की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग बंद कर देना चाहिए तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाकर अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। आजादी के कुछ समय बाद ही 14 सितंबर, 1949 को हमारी संविधान सभा ने भी हिंदी को राजभाषा का दर्जा दे दिया था और उसी समय यह भी तय हुआ था कि 15 साल के भीतर ही हिंदी को व्यावहारिक रूप में उसका संवैधानिक अधिकार दिलाने की कोशिश भी की जाएगी, लेकिन वास्तविक रूप में ऐसा हुआ नहीं। इसीलिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने हिंदी को हर क्षेत्र में स्थापित करने के लिए सन् 1953 से हर साल 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद केंद्र सरकार ने भी सरकारी कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' का स्वरूप दे दिया, लेकिन आज की तारीख में यह आयोजन भी मात्र एक सरकारी औपचारिकता बनकर रह गया है।

लेकिन दुखद स्थिति यह है कि आजादी के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी हम हिंदी को वह स्थान नहीं दे सके जैसा जापान, कोरिया, इटली जैसे छोटे-छोटे देशों के साथ ही अन्य बड़े और विकसित देशों ने अपनी भाषाओं को दिया है। इसके पीछे कारण तो बहुत से हैं, लेकिन सबसे बड़ा कारण राजनैतिक कहा जा सकता है। हिंदी को पूरे देश की भाषा बनाने की कोशिशों के साथ शुरू से ही राजनीति होने लगी। आजादी के बाद दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में

हेमंत कुमार

हेमंत कुमार टी.वी. और रेडियो के शैक्षिक कार्यक्रम के निर्माण क्षेत्र में प्रतिष्ठित नाम हैं। वे बालमन की गहराई को जानते हैं। उनकी अभी तक 40 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य के लिए वे कई पुरस्कारों से सम्मानित किए गए हैं।

संपर्क : मोबाइल : 9451250698
ई-मेल : drkumarhemant@yahoo.com

पहला शिक्षा आयोग बना था जिसे हम 'कोठारी आयोग' के नाम से भी जानते हैं। इस आयोग ने हिंदी भाषी सभी प्रदेशों में 'त्रिभाषा फार्मूला' लागू करने की सिफारिश की थी। इसका मकसद यह था कि सभी राज्य अपने यहाँ हिंदी, अंग्रेजी के साथ देश के किसी भी राज्य की एक भाषा और पढ़ाएँगे, जिससे प्रभावित होकर दूसरे अहिंदी भाषी प्रदेश भी अपने प्रदेश में हिंदी को पढ़ाने, लिखाने पर जोर देंगे। लेकिन इन हिंदी भाषी प्रदेशों ने यहीं राजनीति शुरू कर दी और अपने स्कूलों में हिंदी, अंग्रेजी के साथ तीसरी भाषा के रूप में संस्कृत पढ़ाने पर जोर दिया। परिणामस्वरूप, अन्य प्रदेशों में हिंदी को उतना महत्व नहीं मिला जो मिलना चाहिए था।

क्या होने चाहिए उपाय

त्रिभाषा फार्मूला लागू हो

हमें हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए सबसे पहले कदम के रूप में सभी हिंदी भाषी प्रदेशों के साथ ही अन्य प्रदेशों में भी कम-से-कम जूनियर स्तर की पढ़ाई के दौरान ही त्रिभाषा फार्मूला लागू कर देना चाहिए। इस काम के लिए केंद्र सरकार को प्राथमिकता के आधार पर राज्यों को निर्देश देना होगा। इससे कम-से-कम स्कूल जीवन से ही बच्चों में अपनी मातृभाषा के साथ दूसरी भाषा सीखने में रुचि रहेगी और हिंदी भाषी प्रदेशों के साथ ही गैर-हिंदी भाषी प्रदेशों में भी हिंदी के विकास का उचित अवसर मिलेगा।

इंटरनेट पर हिंदी कंटेंट को बढ़ावा

आज इंटरनेट का जमाना है। हर व्यक्ति अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए पुस्तकालयों या किताबों को खँगालने के बजाय सीधे इंटरनेट की ओर भाग रहा है। चाहे वो सरकारी कर्मचारी हो, प्राईवेट नौकरी वाला, किसी भी क्षेत्र का व्यावसायिक काम करने वाला या फिर विद्यार्थी। हर व्यक्ति अपने प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए सीधे गूगल बाबा की शरण में पहुँच जाता है, लेकिन मुश्किल यह है कि अपने गूगल बाबा या दूसरे शब्दों में कहें कि इंटरनेट पर उसे हिंदी में अपने प्रश्नों के उत्तर पाने में बहुत परेशानी होती है। कारण साफ है कि इंटरनेट पर आज भी हिंदी भाषा में विभिन्न विषयों की उतनी सामग्री उपलब्ध नहीं है जितनी कि अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं में। यहाँ तक कि विकीपीडिया या मुक्त ज्ञानकोष पर भी अभी हिंदी भाषा में पर्याप्त सामग्री नहीं मौजूद है। इसलिए हमें इस दिशा में हर स्तर पर काफी प्रयास करने होंगे। यानी इंटरनेट पर हिंदी भाषा में अधिक-से-अधिक कंटेंट या सामग्री पहुँचाने की जरूरत है।

प्रवासी भारतीयों को सम्मान

आज हवाई यात्राओं और इंटरनेट के सुलभ हो जाने का ही नतीजा है कि दुनिया के हर देश में भारत के लोग अच्छी-अच्छी नौकरियों में प्रतिष्ठित पदों पर मौजूद हैं। वे हिंदी को आगे बढ़ाने का काम भी काफी तेजी से कर रहे हैं, चाहे वह अमेरिका हो, यूरोपीय देश हों या

एशियाई देश। हर देश में हिंदी की किताबें लिखी जा रही हैं, ब्लॉग लिखे जा रहे हैं, लोग हिंदी सीख भी रहे हैं यहाँ तक कि कहीं प्राथमिक स्तर तो कहीं विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी पढ़ाई भी जा रही है। अमेरिकी रक्षा विभाग में पदस्थ मधुमिता मेहरोत्रा हिंदी अध्यापिका हैं, जो अमेरिकी सैनिकों को हिंदी भाषा के अक्षर ज्ञान के साथ उन्हें भारतवर्ष के इंटरमीडिएट स्तर तक की हिंदी पढ़ा रही हैं।

ऐसे जो भी भारतीय विदेशों में हिंदी लेखन, पठन-पाठन और हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत हैं, उन्हें कम-से-कम अपने देश भारत की तरफ से किसी कार्यक्रम के तहत सम्मानित करने की आवश्यकता है जिससे उन्हें अपने देश में भी एक नई पहचान मिले, जिससे हमारे देश के लोग भी समझें कि अमुक व्यक्ति विदेश सिर्फ पैसे कमाने नहीं गया है, बल्कि वह अपने देश की भाषा और संस्कृति को भी आगे बढ़ा रहा।

वेबसाइट्स पर सरल हिंदी

आज लगभग हर सरकारी, गैर-सरकारी विभागों, कंपनियों की अपनी वेबसाइट्स और पोर्टल्स हैं। ये वेबसाइट्स ज्यादातर अंग्रेजी भाषा में ही काम करती हैं। गूगल के माध्यम से उन्हें हिंदी में भी पढ़ा जा सकता है, लेकिन उसमें भाषा और शब्दों की बहुत-सी गड़बड़ियाँ सामने आ जाती हैं क्योंकि गूगल के अनुवाद करने वाले सॉफ्टवेयर की भी अपनी सीमाएँ हैं। इसीलिए यह बहुत जरूरी है कि ऐसी सरकारी वेबसाइट्स पर प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री सही और शुद्ध हिंदी में अपलोड की जाए।

हिंदी को बोलचाल की भाषा बनाया जाए, न कि किताबी

हिंदी के विकास में एक सबसे बड़ा रोड़ा यह भी है कि बहुत से तथाकथित विद्वान उसे सिर्फ कठिन, दुरूह और किताबी भाषा बनाकर रखना चाहते हैं। जबकि यह एक कड़वी सच्चाई है कि किसी भी भाषा की दुरूहता उसकी सबसे बड़ी कमजोरी भी होती है और उसको समाप्त करने वाला सबसे बड़ा कारक भी। दुनिया की तमाम बोलियाँ और भाषाएँ आज सिर्फ इसीलिए गायब हो गईं, क्योंकि उनमें शब्द कठिन थे। उनके वाक्य बहुत दुरूह होते थे। उनको समझने और बोलने वाले बहुत कम थे। हमें हिंदी को ऐसी दुरूह,

क्लिष्ट भाषा नहीं बनाने देना है जो सिर्फ किताबों तक सीमित रह जाए, जिसे आम जनमानस समझ ही न पाए। बोल ही न पाए।

सरकारी काम-काज में भी सरल हिंदी

सबसे जरूरी बिंदु जिस पर हमें काम करने की जरूरत है, वो है सरकारी काम-काज, कोर्ट-कचहरी में सरल हिंदी का प्रयोग किया जाए। क्योंकि इन कार्यालयों, कोर्ट-कचहरी से वास्ता तो सबसे ज्यादा देश की आम जनता का ही पड़ता है। अब अगर उसके लिए बनाई जाने वाली किसी योजना की जानकारी आम जनता को क्लिष्ट हिंदी में दी जाएगी, तो न तो वह योजना को समझ सकेगा, न ही उसका कोई लाभ ही उठा सकेगा। हिंदी के विकास के लिए इस दिशा में काम करने की भी बहुत जरूरत है।

हिंदी माध्यम से भी पैसा

अकसर आमजन, अभिभावक या हिंदी का विरोध करने वाले लोग यह रोना रोते मिल जाते हैं कि हिंदी पढ़ाकर हम बच्चों का क्या भला कर सकते हैं? उसे कहाँ नौकरी मिलेगी? यहाँ तक कि हिंदी के तमाम

साहित्यकार तक ये रोना रोते मिल जाएँगे कि भैया हिंदी में लिखने से अच्छा तो कोई दूसरा काम कर लेते। इसमें हमें कौन-सा पैसा मिल रहा?

आज के समय में लोगों को यह रोना बंद कर देना चाहिए क्योंकि इस दिशा में अब अपार संभावनाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं। आज हिंदी की अच्छी पढ़ाई करके आपका बच्चा तमाम नौकरियाँ पा सकता है। हिंदी अधिकारी, राजभाषा अधिकारी, अनुवादक, कंटेंट डेवलपर, कॉपी राइटर, कॉपी एडिटर, प्रूफ रीडर, ऑन लाइन शिक्षण (विदेश में हिंदी सीखने वालों को), ऐसे तमाम क्षेत्र हैं जिन पर आपका बच्चा अपनी भाषा—हिंदी की बदौलत अच्छी नौकरी और अच्छा वेतन दोनों पा सकता है।

जहाँ तक हिंदी साहित्य लेखन से जुड़े लोगों की बात है। उन्हें भी हिंदी के माध्यम से पैसा न कमा पाने का रोना बंद करना चाहिए। मैंने हिंदी में ही डॉक्टरेट किया, फिर भी शिक्षण क्षेत्र में न जाकर शैक्षिक दूरदर्शन में स्क्रिप्ट राइटर हो गया और प्रवक्ता, उत्पादन पद से सेवानिवृत्त हुआ। अपनी 32 साल की सेवा के पहले से ही मैं लेखन कार्य से जुड़ा था। मैं पिछले 40 सालों से बच्चों-बड़ों के लिए लिख रहा हूँ। इस दौरान मैंने लेखन के साथ ही अपनी आय बढ़ाने के लिए हिंदी का हर काम—अनुवाद, संपादन, कॉपी राइटिंग, प्रूफ रीडिंग सभी कुछ किया और इन कामों से अच्छी कमाई भी की। इसलिए मेरा कहने का मकसद सिर्फ यह है कि आप हिंदी में काम करके भी अच्छी कमाई कर सकते हैं। बस जरूरत है थोड़ा क्रिएटिव और व्यावसायिक सोच विकसित करने की।

हिंदी की बेहतरी के लिए ये तो कुछ वो महत्वपूर्ण बिंदु थे, जिन पर सरकारी स्तर पर काम होना चाहिए। इनके अलावा भी कुछ ऐसे काम हैं जिन्हें हमें और आपको मिल-जुलकर करना होगा।

आमजन इस दिशा में क्या करें?

घर में हिंदीमय माहौल बनाएँ। यह सही है कि आपके बच्चे को आज हिंदी के साथ अंग्रेजी की भी जरूरत है। आप उसे अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में भी पढ़ा रहे हैं, लेकिन कम-से-कम आप अपने घर पर हिंदी का माहौल बनाए रखें। बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के बीच बातचीत का माध्यम हिंदी रखकर भी हम हिंदी को आगे बढ़ा सकते हैं।

कोशिश करें कि अपने पत्र व्यवहार, ई-मेल को सरल हिंदी भाषा में लिखकर भेजें।

जरूरी नहीं कि आप साहित्य लिखकर ही हिंदी की सेवा करें। आप अपने घर में होने वाले किसी शुभ कार्य या आयोजन के निमंत्रण पत्र हिंदी में छपवाकर भी हिंदी को एक कदम आगे बढ़ा सकते हैं।

बसों, रेलवे, हवाईजहाज इत्यादि का आरक्षण प्रपत्र हिंदी में भरना भी अपनी हिंदी भाषा का सम्मान करना है।

अपने बच्चों को कम-से-कम महीने में एक-दो हिंदी पत्रिकाएँ या किताबें लाकर पढ़ने के लिए दें। इस तरह आप अपने बच्चों की हिंदी के प्रति रुचि बढ़ा सकेंगे।

आप अपने घरों में कैलेंडर, डायरियाँ हिंदी भाषा में छपी हुई लाकर भी हिंदी भाषा को आगे बढ़ा सकते हैं।

आओ हम सब कदम बढ़ाएँ, हिंदी को कुछ सरल बनाएँ।
छोटी-छोटी कोशिश से ही, पूरी दुनिया में इसे फैलाएँ॥

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
पक्षी	**पक्षिन्ः**	**पंछी**	**परिंदे**	**वुडवन्य जानावार**	**पखी**	**पक्षी**	**पक्षी**	**पक्षी, पंखी**	**पक्षी**	**पाखि**
उल्लू	उलूकः	उल्लू	उल्लू	रात मोगुल	चिॿिरो	घुबड	घूगूम	घुवड़	लाटोकोसेरो, उल्लू	पेंचा, उलुक, उल्लुक
कबूतर	कपोतः, पारावतः	कबूतर	कबूतर	कोतुर	कबूतरु	कपोत, पारवा, कबुतर,	पारवो	कबूतर, पारेवुं	परेवा	पायरा, कबुतर
कोयल	पिकः, कोकिलः	कोइल	कोयल	कुकिल	कोइलि	कोकिळा	कोगूळ	कोयल	कोइली	कोकिल, कोयेल
कौआ	काकः	काँ	कौवा	काव	कांउ	कावळा	कावळो, कायळो	कागडो	काग	काक, काग
गरुड़	गरुडः	गरड़	गरुड	गरुड	गरुॾु	गरुड	गरुड	गरुड़	गरुड	गरुड़
गौरैया	गृहचटकः	गौरीआ	गौरैया	चॅर	झिर्की	एक पक्षी, चिमण	चिमणी	एक पक्षी	भँगेरो	चड़ाइ, चड़ुइ पाखि
चील	चिल्ला, चिल्लः	इल्ल	चील	गॉण्ठ	सिरणि	घार	घोण	समड़ी (ळी)	चील	चिल
तीतर	तित्तिरः	तित्तर	तीतर	तीतर	तितिरु	तित्तर, कवडा	कवडो	तेतर	तित्रो	तितिर
तोता	शुकः	तोता	तोता	तोत	तोतो	पोपट	पोपट	पोपट, सूडो	सुगा	तोता
बगुला	वकः	बगला	बगुला	क्वल टूँच	ॿघु, ॿघुलो	बगळा	बकें	बगलो	बकुल्लो	बक
बुलबुल	बुलबुलः	बुलबुल	बुलबुल	बुलबुल, बिल्यबिचुर	बुलबुल	बुलबुल	बुलबूल	बुलबुल	जुरेलो चरो, बुलबुल	बुलबुल, बुलबुलि
मोर	मयूरः	मोर	मोर	मोर	मोरु	मोर	मोर	मोर	मुजुर	मयूर

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
पक्षी, चराइ	**उचेक्**	**पक्षी**	**पक्षुलु**	**पऱवैगळ्**	**पक्षिकळ्**	**पक्षिगळु**	**पक्खरू, पैंछी, परिंद**	**चेंड़े**	**पक्षी**	**दाउ**
फेंचा	मकू	पेचा	गुड्लगूब	आंदै	मूङ्ङ, कूमन्	गूबे	उल्लू	ककर	उल्लू	फेसा
पार, पारचराइ	खुनू	पारा, कपोत	पावुरमु	पुऱा	प्रावुॅ	पारिवाळ	कबूतर	पावरा	पड़बा	फारौ
कुलि	कोकिल	कोइलि, कोकिल	कोकिल	कुयिल्	कुयिल	कोगिले	कोयल	कुइली	कोइली	दाउ खौवौ
काउरी	क्वाक्	काउ (कुआ)	काकि	काक्कै, कागम्	काक्क	कागे	कां	काहुँ	कौआ	दाउखा
गडुर पखि	गरुड़	गरुड़	गरुड़ पक्षि	गरुडन्	गरुडन्	गरुड	गरड़	गारूड़	गरुड़	सिला, खुरूवा
घनचिरिका/ घरचिरिया	सेनद्राङ्	पाणिकुआ	पिच्चुक	चिट्टुक्कुरुवि	कुरुवि	गुब्बच्चि	चिड़ी	घाड़वा	बगड़ा	सखा
चिलनी	उमाइबी	चिल	गद्द	परुंदु	कळुकन्	हद्दु	इल्ल, लूंह्दी	कुड़िद्	गिद्ध	सिला
डॅंरिक	उरेमबी	सारी	तीतुव	कौदारि	तित्तिरिप्पक्षि	कवुजुग हक्कि, तित्तिर पक्षि	तित्तर	चित् रि	तित्तिरि	दाउ देंखुर
भाटौ	तेनवा	शुआ (शुक)	चिलुक	किळि	शुकम्, तत्त	गिळि	तोता, सुग्गा, गंगाराम	मिरू	सुग्गा	बाथ
बगली	उरोक	बगुला, बग	कोंग	कोक्कु	कोक्कुॅ, बकम्	कोक्करे	बगला	कँकी	बगुला, बक	दाउब
बुलबुल	खोइनिङ्	बुलबुल	बुलबुल-पिट्ट	वानंबाडि	वानंपाटि, बुलबुल्	बुलबुल-पक्षि	बुलबुल	टिक्टँड़च	बुलबुल	दाउलुर
मरा, मयूर	वाहोङ्	मयूर	नेमलि	मयिल्	मयूरम्, मयिल	नविलु	मोर	माराकी	मयूर, मजूर	दाउराइ

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

पाँच हजार साल पहले की सभ्यता : धोलावीरा

सिंधु घाटी सभ्यता के पाँच प्रमुख शहरों में से हैं—मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, गनेरीवाला (सभी पकिस्तान में), धोलावीरा तथा राखीगढ़ी (भारत में)। लोथल, कालीबंगा, बनावली आदि कुछ अन्य पुरास्थल हैं। धोलावीरा की खोज बाद में हुई, इसलिए उसका अस्तित्व बाद में पता चला। लेकिन धोलावीरा की खुदाई में जो कुछ मिला है, वह अनमोल है। जल्द ही पुरातत्वविद इस सभ्यता की लिपि पढ़ लेंगे, तब बहुत कुछ नया जानने को मिल सकेगा। धोलावीरा भी मोहनजोदड़ो और हड़प्पा संस्कृति की समकालीन है, लेकिन चूँकि इनकी खुदाई अंग्रेजों के समय हुई थी, इसलिए वह अधूरी रही। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में हमें शहर की बसावट दो स्तर पर मिलती है। सबसे ऊपर राज-पुरुषों (मुखिया) की बस्ती और उसके नीचे आम जनता की बस्ती, लेकिन

धोलावीरा में यह त्रिस्तरीय है। सबसे ऊपर राज-पुरुष, बीच में मिडिल टाउन और सबसे नीचे आम लोगों की बस्ती। खुशी की बात यह है कि यूनेस्को ने 27 जुलाई, 2021 को इसे विश्व धरोहर मान लिया है। इस तरह यह 40वीं धरोहर हुई, जिसे अंतरराष्ट्रीय मान्यता मिली है।

हालाँकि यूनेस्को ने इसकी जानकारी मिलने और खुदाई शुरू होने के बाद ही धोलावीरा को अस्थायी स्मारक मान लिया था। पर 2014 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआइ) के महानिदेशक राकेश तिवारी ने इसे विश्व धरोहर बनाने की कोशिशें भी शुरू कर दी थीं। जनवरी 2020 में भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने इस अभियान को और गति दी। धोलावीरा दक्षिण एशिया की बहुत पुरानी नगरीय सभ्यता थी, ईसा से कोई 2500 और 3000 हजार वर्ष पूर्व की। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, राखीगढ़ी और गनेरीवाला (आकार के क्रम में) की तरह यहाँ भी खुदाई से उसी पुरानी सिंधु सभ्यता के अवशेष मिले हैं। यह साइट कच्छ के रन में खदिर द्वीप में है। इसके उत्तर की तरफ 'मनसर' और दक्षिण में 'मनहर' नाम के दो मौसमी नाले हैं।

लगभग 60 हेक्टेयर में फैले इन अवशेषों में इस सभ्यता के मकानों की बनावट (राज प्रासाद, उप प्रासाद, मध्य नगर और निचले नगर) का पता चला है। पत्थर के स्तंभ मिले हैं तथा शहर से बाहर व्यापार हेतु आने-जाने के रास्तों का पता चला है। यहाँ जल निकासी हेतु नालियाँ हैं, कुएँ हैं तथा पत्थरों को घेर कर तालाब की शक्ल में बनाए गए स्नानागार भी। एक और उपलब्धि है कि यहाँ शवाधान पद्धति के प्रमाण भी मिले हैं। इससे इसके एक उन्नत सभ्यता होने की पुष्टि होती है। राज प्रासाद के उत्तरी गेट से दस अक्षरों वाला एक अभिलेख मिला है। इसके अलावा हड़प्पा सभ्यता की तरह यहाँ भी मुहरें, मुद्रण, मनके, मिट्टी के बरतन भी प्राप्त हुए हैं।

शंभूनाथ शुक्ल

जन्म : 14 फरवरी।

श्री शुक्ल देश के वरिष्ठ पत्रकार हैं, वे अमर उजाला, जनसत्ता जैसे समाचार पत्रों के संपादक रहे हैं।

कानपुर विश्वविद्यालय से स्नातक श्री शुक्ल इन दिनों स्वतंत्र पत्रकार के रूप में लेखन और विभिन्न समाचार चैनलों पर विशेषज्ञ के रूप में सक्रिय हैं।

संपर्क :

ई-मेल : shambhunaths@gmail.com

पुरातत्व विशेषज्ञों के अनुसार, इस नगर ने 3000 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व तक सात बार उत्थान और पतन को देखा। चौथे और पाँचवें चरण में यह अपने चरमोत्कर्ष पर था। फिर यह नगर सिकुड़ने लगा और 1900 ईसा पूर्व के आस-पास यह एक छोटा-सा नगर रह गया और फिर गाँव का रूप लेते-लेते विलुप्त हो गया। 1967 के आस-पास पुरातत्वविद जगतपति जोशी ने इस सभ्यता के अवशेषों का पता लगाया। वे बाद में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक भी रहे। वर्ष 1989 में पुरातत्वविद पद्मश्री डॉ. रवींद्र सिंह बिष्ट की देख-रेख में यहाँ पर खुदाई शुरू हुई। उनके साथ यदुवीर सिंह रावत रहे और सर्वाधिक लंबे समय तक कोई 13 सत्रों में इन लोगों ने यहाँ खुदाई करवाई। वर्ष 1991 से 1994 के बीच अनिल तिवारी ने यहाँ के उत्खनन कार्य में भाग लिया। यदुवीर सिंह रावत गुजरात स्टेट पुरातत्व विभाग के प्रमुख भी रहे।

मैं कोरोना काल के कुछ पहले 2019 में इस 5000 साल पुरानी सभ्यता के खंडहर देखने गया था। हालाँकि इसके बाद कोरोना के चलते इस साइट पर एएसआई के विशेषज्ञों के अलावा किसी और के जाने पर रोक लगा दी गई थी। मैं अपने परिवार के साथ साइट पर एएसआई के गेस्ट हाउस में रुका था। जहाँ न बिजली थी, न भोजन का इंतजाम। सोचिए, इस सभ्यता के अवशेषों की खुदाई कराने वाले पुरातत्वविदों को कितना संघर्ष करना पड़ा होगा। मुझे तब एएसआई की गुजरात इकाई के प्रमुख अनिल तिवारी ने जयमल भाई का ही नंबर दिया था।

उस समय कच्छ के रन में अँधेरे के सन्नाटे को चीरती हुई हमारी गाड़ी नमक के समंदर के बीच से गुजरती हुई पतली-सी डामर रोड को पार कर आखिर रात आठ बजे पत्थरों से बनी एक प्राचीर के पास जाकर जब रुकी थी तब उस सन्नाटे से मुझे भी सिहरन हुई थी। यहाँ आकर सड़क खत्म हो जाती थी। घुप्प अँधेरा था। कुछ देर बाद दो लोग मेरे समीप आए। एक सज्जन बोले—"शुक्ला जी?" मैंने कहा—"जी, आप जयमल भाई हो?" बोले—"हाँ!" और गले से लग गए। जयमल भाई पिछले 28 वर्षों से इस खंडहर की रखवाली कर रहे थे। एक टीले की खुदाई के वक्त से लेकर आज ढाई सौ एकड़ में फैले धोलावीरा के खंडहर का एक-एक पत्थर जयमल भाई का दोस्त है। वे पूरा दिन और कभी-कभी रात को भी इस प्राचीर के अंदर जाकर 5000 साल से अधिक पहले की इस सभ्यता से रू-ब-रू होते हैं। उसे जितना ही जानने का वे प्रयत्न करते हैं, उतना ही उसमें डूबते जाते हैं। कहते हैं कि यहाँ का हर पत्थर उनसे बात करता है। यह पूरा इलाका भारतीय पुरातत्व विभाग की देख-रेख में है।

हमारे लिए तुरंत एएसआई गेस्ट हाउस के तीन कमरे खुलवाए गए, साफ-सुथरे करीने से सजे हुए। कुछ देर के लिए जेनरेटर चलाया गया, तो बिजली की रोशनी से सब-कुछ साफ-साफ दिखने लगा। लगभग दो एकड़ में गेस्ट हाउस और उससे लगा हुआ 100 हेक्टेयर यानी 250 एकड़ का एएसआई संरक्षित क्षेत्र। जयमल भाई हमारे लिए भोजन का इंतजाम करने पड़ोस में स्थित अपने गाँव धोलावीरा चले गए। हम भी कोई 425 कि.मी. की यात्रा कर बुरी तरह थक चुके थे। जूते उतारे और हवाई चप्पल पहन लीं। थोड़ा आराम करने के बाद हम सब गेस्ट हाउस के बीच में बने विशाल मैदान में पड़ी बेंच पर बैठ गए। उनका सहायक चाय ले आया। चाय पीते-पीते मन बना कि खुदाई वाले परिसर में जाया जाए। जयमल भाई का सहायक भी उनके जैसा ही जुनूनी। फौरन राज़ी हो गया। एक बड़ी-सी टॉर्च ले आया और हम सब उसके पीछे चल दिए। संरक्षित क्षेत्र की प्राचीर का फाटक खोलते हुए उसने चेतावनी दी कि आप लोग सँभल कर चलिएगा, क्योंकि यहाँ साँप और बिच्छू बहुत हैं। यह सुनते ही हमें थोड़ा भय लगा और हम सब ने अपने-अपने मोबाइल के टॉर्च जला लिए। बहुत सँभल-सँभल कर पाँव रखने लगे। बच्चों को गोद में उठा लिया गया।

करीब दो सौ मीटर चलने पर एक हौज़ दिखा। लगभग 200 फीट लंबा और 100 फीट चौड़ा। इसकी गहराई कोई 20 फीट रही होगी। इसके बाद टीले ही टीले। हम लोग अब अधिक दूर नहीं जा सकते थे, इसलिए लौट आए। धोलावीरा के अवशेषों के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी। मेरे समय पाठ्यक्रम में बस मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा को ही पढ़ाया गया था, लेकिन सीबीएसई की आठवीं कक्षा में पढ़ने वाले मेरे नाती ने बताया कि उसे धोलावीरा के बारे में पढ़ाया जाता है। यह सिंधु घाटी सभ्यता है, जो मोहनजोदड़ो के बाद विकसित हुई। इसके बारे में कहा गया है कि यह 2000 से 3000 ईसा पूर्व की सभ्यता है। मुझे लगा कि यदि ऐसा है, तो इसका मतलब कि आर्य सभ्यता के पहले यह विकसित हुई होगी। कहाँ से आए होंगे यहाँ बसे लोग? और कहाँ विलुप्त हो गए ये लोग?

मनुष्य तो लगातार इधर-उधर घूमता ही रहा है। यही सोचते-सोचते हम लोग वापस लौट आए। जयमल भाई ने हॉल के अंदर डाइनिंग टेबल पर डिनर जमा दिया। शुद्ध कच्छी भोजन। लेकिन मैंने तो सिर्फ खिचड़ी और कढ़ी ही खाई। भोजन के बाद हम फिर मैदान में आकर बैठ गए।

अब जेनरेटर बंद कर दिया गया था। घुप्प अँधेरा था। बहुत दिनों बाद ऐसा आसमान देखा, जिसका एक-एक तारा साफ दिख रहा था। सप्तऋषि भी और ध्रुवतारा भी। मैंने बच्चों को ये तारे दिखाए। गेस्ट हाउस एक गोलाकार मैदान में बना था, जिसके चारों तरफ चार

फुट ऊँची पत्थर की दीवार थी। यह दीवार बीच-बीच में टूटी भी थी। यहाँ कोई हिंसक जानवर तो नहीं था, लेकिन भेड़िये आ जाते थे। उनकी सूचना देने के लिए कई कुत्ते गेस्ट हाउस में पले थे। चोरी का कोई खतरा नहीं था, लेकिन एक तो कमरों के बाहर की जमीन ऊबड़-खाबड़ थी, दूसरे साँप-बिच्छू को तो कोई रोक-टोक नहीं थी। जयमल भाई हमें बताने लगे कि यहाँ खुदाई कई बार हुई, आखिरी बार डॉ. आर.एस. बिष्ट ने कराई थी, और मैं उनके साथ रहा। यह बात 1989-90 की है। यहाँ जो अवशेष मिले हैं, उनसे यह तो लगता ही है कि यहाँ की सभ्यता बहुत उन्नत रही होगी। पर इससे ज्यादा वे नहीं बता सके। यह तय हुआ कि अगले दिन हम इन अवशेषों को देखने चलेंगे।

जयमल भाई के जाने के बाद सब लोग सोने चले गए, लेकिन पूरी रात मुझे नींद नहीं आई। बार-बार लगे कि कोई फुसफुसा कर मुझे बुला रहा है, टॉर्च जलाओ तो कहीं कोई नहीं। एकाध बार पलक झपकी तो लगा कि मेरा कमरा कोई हिला रहा है, पर पलक खुली तो सब गायब। यह सब कोई मेरे मन का भ्रम नहीं, दरअसल मैं खुद इस सिंधु घाटी की कल्पनाओं में इतना गुम हो गया कि मुझे वह सभ्यता साक्षात दिखने लगी। मुझे बेकरारी से इंतजार था सुबह का। जयमल भाई कह गए थे कि सुबह पौने सात बजे हम यहाँ से आठ कि.मी. दूर फासिल जाएँगे, वहाँ से सूर्योदय देखेंगे। और दूर-दूर तक फैले सफेद रण को देखेंगे तथा लाखों वर्ष से पड़े उल्का-पिंडों को भी। जयमल भाई ने यह भी बताया कि सीमा सुरक्षा बल की आखिरी पोस्ट भी कुछ ही दूरी पर है, उसके आगे रण और इस रण के बीच से ही पाकिस्तान की सीमा। इसलिए इंतजार था, तो बस सुबह का।

खुद जयमल भाई इसके एक उदाहरण हैं। वे पुरातत्वविद नहीं हैं, न ही उन्होंने इतिहास पढ़ा, न ही अंग्रेजी, हिंदी आदि आधुनिक भाषाएँ। वे ठेठ देहाती हैं। उनका गाँव धोलावीरा है। 1989 में जब इस स्थान की खुदाई शुरू हुई, तब उनकी उम्र अधिक नहीं थी और कच्छियों जैसी सहजता के साथ वे यहाँ उस टीले की खुदाई देखने लगे, जिसके भीतर कुछ था, पर क्या था, यह पता नहीं। पुरातत्वविद डॉ. आर.एस. बिष्ट और डॉ. यदुवीर सिंह रावत यहाँ पर खुदाई करवा रहे थे। दोनों ही उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र (मौजूदा उत्तराखंड) के मूल निवासी हैं और क्रमशः लखनऊ विश्वविद्यालय तथा गढ़वाल विश्वविद्यालय में पढ़े हैं। इनकी संगत में जयमल भाई भी यहाँ मजदूरी करने लगे। वे भले कोई पुरातत्व के मर्मज्ञ नहीं हों, मगर वे खुदाई में ऐसे रम गए कि हर पत्थर उनसे बतियाने लगा। वे बताते हैं कि फावड़ा चलाते ही पत्थर उन्हें बता देता था कि हौले से जयमल भाई! यहाँ पाँच हजार साल पुराना खजाना है और इसी बूते वे पत्थरों को खोदकर टेराकोटा के भाँड तथा प्रतिमाएँ निकाल सके। यह जयमल भाई की लगन थी।

भारतीय भू-भाग में जो भी मानव सभ्यता के अवशेष मिले हैं, वे सिंधु घाटी के हैं यानी अधिक-से-अधिक पाँच हजार वर्ष पहले के। तब तक मनुष्य समुद्र के जरिये एक स्थान से दूसरे स्थान जाने लगा था। सबसे पहले मनुष्यों ने दूरगामी यात्राओं के लिए समुद्री मार्ग ही चुना था। उसके लिए लंबी पैदल यात्रा सुगम न थी क्योंकि वह दो पैरों से चलता था और इसलिए कुदान भरना और बिजली की गति से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना, उसके लिए आसान नहीं था। दूसरे धीरे-धीरे सजने-धजने तथा आराम-तलबी ने उसकी शारीरिक

क्षमताएँ कम कर दीं। अब न तो वह तेजी से भाग सकता था, न पेड़ों पर चढ़ सकता था, न ही तैर सकता था, लेकिन बुद्धि से उसने आग की खोज कर ली, पत्थरों को परस्पर टकराकर। आग को आँच और लौ देना भी। उसने सूखी लकड़ी, फूस आदि के प्रयोग से आग को सहेजना भी समझ लिया। मछली पकड़ने के लिए मनुष्यों ने नाव बना ली, क्योंकि मछली कच्ची भी खाई जा सकती थी और उसे पकड़ना भी आसान था। नाव से वह अपनी यात्रा लंबी करता गया और जिस समुद्र को वह अतल और अपार समझता था, उसकी थाह और उसके पार को उसने देख लिया। घोड़े को पालतू बनाकर उस पर सवारी करना, गधे और ऊँट से माल ढुलाई भी उसे समझ आ गई। एक जगह से दूसरी जगह जाना, एक परिवार बनाकर रहना और दूसरे परिवार पर हमला कर उसकी संपत्ति छीनना भी उसे आ गया। इस लूट और हिंसक वृत्ति ने उसे घुमक्कड़ बनाया, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन सिखाया। ये सब बातें आज भले ही अराजक लगें, लेकिन आज के समाज और आज की सभ्यता तक पहुँचने के लिए यह लूट और हिंसा आवश्यक थी।

ऊँटगाड़ी पर सवार पुस्तकें

जहाँ एक ओर कोरोना ने बच्चों को शिक्षा से वंचित कर दिया और वहीं स्कूलों के बंद होने के बाद ऑनलाइन कक्षाओं का दौर शुरू हो गया। खैर... ऐसे समय में आखिर यही तो एक अंतिम विकल्प बचा था बच्चों तक पहुँचने का। लेकिन देशभर में कुछ ऐसे भी गाँव-ढाणी हैं, जहाँ नेटवर्क नहीं आने से बच्चों को ऑनलाइन कक्षाओं से भी वंचित रहना पड़ा है।

ऐसे में राजस्थान के जोधपुर जिले के रेतीले धोरों के बीच दूरदराज के गाँव और ढाणियों में बच्चों के लिए 'रूम टू रीड संस्था' ने 'रीडिंग कैंपेन इंडिया 2021' के अंतर्गत 'इंडिया गेट्स रीडिंग एट होम' 'मैं जहाँ, सीखना वहाँ' 'नहीं रुकेंगे नन्हे कदम, घर पर भी अब सीखेंगे हम' जैसे विषय पर 'विश्व

साक्षरता दिवस' (08 सितंबर) को प्रभावी बनाने के लिए 15 अगस्त से 10 सितंबर, 2021 तक जोधपुर के ओसियाँ ब्लॉक में एक अनूठी पहल की।

'रूम टू रीड' 16 देशों, भारत के नौ राज्यों और राजस्थान के नौ जिलों में तथा जोधपुर जिले के 383 विद्यालयों में पुस्तकालय के माध्यम से शिक्षा की अलख जगा रहा है। इन विद्यालयों में संस्था द्वारा चार वर्ष तक कार्य करके काम में ली गई पुस्तकें विद्यालय को ही सौंप दी जाती हैं।

राजस्थान में इस संस्था द्वारा 'रेगिस्तान का जहाज' कहे जाने वाले पशु की गाड़ी 'ऊँटगाड़ी' पर मोबाइल लाइब्रेरी चलाई गई। इस थीम के प्रोजेक्ट को अंजाम दिया संस्था कार्यकर्ता जितेन्द्रसिंह, शशिकांत सिंह या गणेश टांक ने। यह प्रदेश की पहली मोबाइल लाइब्रेरी थी, जो ऊँटगाड़ी पर शुरू हुई। इसका उद्घाटन शिक्षा विभाग के संयुक्त निदेशक प्रेमचंद सांखला ने हरी झंडी दिखाकर किया। इसके माध्यम से ओसियाँ ब्लॉक के 30 गाँवों और 75 ढाणियों में पहुँचकर बच्चों को एक शैक्षिक वातावरण देने का प्रयास किया गया। यह उन्हीं गाँवों में जाती जहाँ के सरकारी विद्यालयों में संस्था द्वारा पुस्तकालय कार्यक्रम चलता था। एक दिन में यह करीब तीन-चार गाँवों या ढाणियों में जाती और हर गाँव में लगभग घंटे-सवा घंटे रुकती। लाइब्रेरी जिसमें छोटे-बड़े बच्चों की लगभग 1500 पुस्तकें थीं। इनमें सबसे ज्यादा कहानी और चित्रकला की पुस्तकें थीं।

लाइब्रेरी जिन गाँवों में गई वहाँ कई सारे बच्चों के माता-पिता पढ़े-लिखे नहीं थे, कई घरों में तो फोन भी नहीं था। ऐसे गाँवों के बच्चे, इस अजूबा गाड़ी को देख उसके साथ-साथ हो लेते तो बड़े इस सब नजारे को

अनुपमा तिवारी

संप्रति : वे एक कवयित्री, कहानीकार और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। वे 32 वर्षों से शिक्षा और सामाजिक सरोकारों पर काम करने वाली विभिन्न संस्थाओं से जुड़ी रही हैं। वे वर्तमान में अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, राजस्थान में शिक्षक प्रशिक्षिका के रूप में कार्यरत हैं।

लेखन : दो कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह के साथ-ही-साथ शिक्षा, पर्यावरण और सामाजिक मुद्दों पर अनेक लेख प्रकाशित।

संपर्क :

ई-मेल : anupamatiwari91@gmail.com

देर तक निहारते रहते और प्रतीक्षा करते कि अब अगला क्या अजूबा होने वाला है? गाँव या ढाणी में पहुँचकर संस्था के लिटरेसी फेसिलिटेटर, लोगों और बच्चों से मिलते, बतियाते फिर कोई मुफीद जगह ढूँढ़कर चौपाल लगाते और गाँव के ही किसी बाबा, माता जी, बहिन जी, सरपंच, एस.एम.सी. के सदस्य या किसी ऐसे व्यक्ति को आमंत्रित करते जो कि मनचाही पुस्तक चुनकर बच्चों को कोई भी कहानी या कविता सुना सके। इसमें पढ़ने वाले को कोई भी पुस्तक चुनकर बच्चों को कहानी सुनाने या कविता बुलवाने की पूरी आजादी थी।

जब गाँव में कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं मिलता या कहानी सुनाने को राजी नहीं होता तो गाँव के स्थानीय शिक्षक या ऊँटगाड़ी के

साथ आया संस्था का लिटरेसी फेसिलिटेटर ही इन बच्चों को कहानियाँ या कविताएँ सुनाकर उन पर बातचीत करता। जहाँ वे अन्य पुस्तकें दिखाकर भी किताबों के संसार से उन्हें रू-ब-रू करवाता। कुछ लिखने-पढ़ने की गतिविधियाँ करवाता। बच्चे चित्र बनाते और स्वयं भी कुछ-कुछ कहानियाँ सुनाते।

ऊँटगाड़ी पर पुस्तकालय देखकर कुछ बच्चों ने यूँ प्रतिक्रिया दी–

- ☺ किशी सुंदर किताब छै!
- ☺ ओहो! ऊँट भी काई सोच रह्यो होयगो?
- ☺ अभी तक तो हम ही लाइब्रेरी में जाते थे, आज लाइब्रेरी मेरे घर आई है।
- ☺ अब चालेला स्कूल के मायने।

शिक्षा विभाग और 'रूम टू रीड' संस्था के सहयोग से बच्चों को घर पर ही पढ़ने और सीखने के मौके उपलब्ध करवाने के प्रयास किए गए। राजकीय प्राथमिक विद्यालय लंकेरियों की ढाणी, बाना का बास में शिक्षा कार्यक्रम आयोजित हुआ, जिसमें संस्था कार्यकर्ताओं ने भागीदारी की, साथ ही विद्यालय के शिक्षक भी जुड़े।

संस्था का मानना है कि समुदाय बच्चों के पढ़ने-लिखने-सीखने में ही नहीं, बल्कि भाषा विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। चाहे बच्चे के माता-पिता पढ़े-लिखे हों या नहीं, जब वे बच्चे से बातचीत करके, समय देकर या स्वयं किसी पुस्तक को पढ़ते हैं या

बच्चे के पढ़े हुए पर बातचीत करते हैं या उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं तो बच्चों का सहज रूप से सीखना होता है और बच्चा पढ़ने की ओर प्रेरित होने लगता है। इससे माता-पिता और बच्चों—दोनों में आत्मविश्वास बढ़ने लगता है कि वे कुछ किताबों के बारे में जानते हैं। इसी विचार से इस रीडिंग कैंपेन में लगभग 1400 से 1500 अभिभावकों तक पहुँच बनी। यह एक तरह का जागरूकता अभियान था जिससे कई बच्चे जो अपने घरों पर ही थे, वे अपने गाँव के स्कूल के पुस्तकालय में अपने छोटे-बड़े भाई-बहनों के साथ जाने लगे। ये बच्चे अपने विद्यालयों से पुस्तकें निकलवा कर भी लेकर आए।

जहाँ ग्रामीण क्षेत्र में ऊँटगाड़ी पर मोबाइल लाइब्रेरी चली वहीं शहरी क्षेत्र में अतिरिक्त कलक्टर मदनलाल नेहरा ने हरी झंडी दिखाकर मोबाइल वैन का उद्घाटन किया। उन्होंने शिक्षकों और अभिभावकों से 'रूम टू रीड' के साथ जुड़कर बच्चों को घर पर नियमित रूप से अध्ययन करवाने का संदेश दिया।

इसी कड़ी में राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय सोडेर की ढाणी के प्रधानाध्यापक और एस.एम.सी. के सदस्यों ने वैन को हरी झंडी

दिखाकर रवाना किया और बच्चों को घर पर ही पढ़ने की बात की। इसी तरह सिरमड़ी गाँव में सरपंच ने वैन को झंडी दिखाकर रवाना किया। यूँ कोरोनाकाल में संस्था ने बच्चों के स्कूल की कमी को कुछ हद तक पूरा करने का प्रयास किया।

संगीत का विज्ञान

संपूर्ण सृष्टि नादमय है; पेड़-पौधे, झील-झरने, नदी-पहाड़, पत्थर-पानी, पशु-पक्षी, जीव-जंतु आदि सभी नाद के अधीन हैं। भारतीय शास्त्रीय परंपरा 'नादाधीनं जगत् सर्वम्' की अनुभूति है, अतः प्रकृति निर्मित हर वस्तु में संगीत व्याप्त है। संसार में उपलब्ध समस्त वस्तुएँ ध्वनि के निष्कर्षण का माध्यम हो सकती हैं, किंतु इन सभी वस्तुओं से उत्पन्न ध्वनि संगीत का पर्याय नहीं हो सकती। चूँकि मनुष्य की श्रवणेंद्रियाँ ही ध्वनियों की अनुभूति का माध्यम हैं, अतः ये अनुभूतियाँ प्रिय-अप्रिय दोनों हो सकती हैं। अप्रिय लगने वाली ध्वनियों को 'शोर' अथवा 'राव' तथा कर्णप्रिय लगने वाली ध्वनियों को 'संगीत ध्वनि' अथवा 'नाद' कहा जाता है।

विद्वानों ने नाद के भी दो भेद स्वीकार किए हैं, 'आहत नाद' तथा 'अनाहत नाद'। सामान्य परिस्थिति में ध्वनि-बोध हेतु ध्वनि उत्पादक वस्तु, माध्यम तथा ग्राहक का होना अनिवार्य है। हमें जब कभी किसी ध्वनि का आभास होता है तब हम उस ध्वनि को पहचानकर उस वस्तु की भी कल्पना कर लेते हैं जिससे ध्वनि उत्पन्न हो रही है, ऐसी ध्वनियों को संगीत की भाषा में 'आहत नाद' कहा जाता है, जिसका सामान्य अर्थ है—आघात, चोट अथवा बल प्रयोग के द्वारा ध्वनि की उत्पत्ति। इसके विपरीत कभी-कभी हमें अपने कानों में एक सनसनाहट अथवा गूँज का आभास होता है जो मस्तिष्क के विकार अथवा किसी अन्य कारण से उत्पन्न हो सकती है, किंतु योग साधक कठिन साधना से अपने भीतर ऐसी ही ध्वनियों को सुनने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी ध्वनियों की उत्पत्ति में न ही किसी वस्तु की आवश्यकता होती है और न ही आघात अथवा बल प्रयोग की, अतः इन्हें 'अनाहत नाद' कहा जाता है।

भारतीय संगीत परंपरा में उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय संगीत दोनों में शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल 12 स्वरों का विधान है। हालाँकि दोनों संगीत पद्धतियों में शुद्ध तथा विकृत स्वरों में विभेद है, किंतु स्वरों के स्थान एक हैं। संगीत की दृष्टि से देखा जाए तो विश्व का संपूर्ण संगीत इन्हीं 12 स्वरों की निष्पत्ति है। इन 12 स्वरों में षड्ज (सा) तथा पंचम (प) 'अचल स्वर' कहे जाते हैं, जिनके विकृत स्वरूप नहीं पाए जाते, ऐसा होने का कारण भी विज्ञान में छिपा हुआ है जिसकी चर्चा आगे करेंगे। इनके अतिरिक्त अन्य पाँच स्वरों ऋषभ (रे), गंधार (ग), मध्यम (म), धैवत (ध) तथा निषाद (नि) अपने विकृत रूप में भी पाए जाए हैं।

उत्तर भारतीय संगीत में अध्ययन की सुविधा हेतु शुद्ध स्वरों को सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। 'सा' से 'नि' तक सात शुद्ध स्वरों के समूह

सुधीर पाण्डेय

जन्म : 06 नवंबर, 1989, लखनऊ।

शिक्षा : पी-एच.डी. (हिंदी साहित्य)।

प्रकाशन : विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कई शोध-लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9369822444
ईमेल— dr.sudheerpandey@gmail.com

को 'सप्तक' कहा जाता है, अन्य पाँच विकृत स्वर भी इन्हीं के मध्य समाए हुए हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का कंठ सामान्यतः तीन सप्तकों जिन्हें संगीत की भाषा में 'मंद्र', 'मध्य' तथा 'तार सप्तक' कहा जाता है, की ध्वनियों को ही निकाल पाने में सक्षम हैं। इनमें मंद्र सप्तक की ध्वनियों को नीचे बिंदु लगाकर तथा तार सप्तक की ध्वनियों को ऊपर बिंदु लगाकर प्रदर्शित किया जाता है। तारत्व की दृष्टि से प्रत्येक सप्तक के स्वरों से अगले सप्तक के उन्हीं स्वरों की

"भिन्न गुणों के कारण ही हम दो वस्तुओं की ध्वनियों में विभेद कर पाते हैं। मंच पर जब अनेक वाद्ययंत्र बज रहे हों तब कलावंत सारे उपकरणों को आपस में मिलाते हैं जिसका वैज्ञानिक अर्थ है, उनकी तारता को समान कर लिया गया है। समान तारत्व होने के बावजूद सामान्य व्यक्ति भी भिन्न-भिन्न वाद्ययंत्रों की ध्वनियों में विभेद कर सकता है जिसका कारण तारता एक हो जाने पर भी दोनों के गुणों का भिन्न होना है।"

आवृत्ति में दोगुने का अंतर होता है अर्थात मंद्र सप्तक से मध्य सप्तक तथा मध्य सप्तक से तार सप्तक के 'सा' की आवृत्ति ठीक दोगुनी रहती है। हिंदुस्तानी पद्धति में पहले स्वर को 'षड्ज' ही कहा जाता है, चाहे वह किसी भी आवृत्ति का हो, फिर इसी स्वर के आधार पर अन्य स्वरों की आवृत्ति तय की जाती है। प्रत्येक सप्तक के प्रथम स्वरों के मध्य समान दूरी पर 12 स्थान हैं जिनमें अन्य स्वर समाए हुए हैं। इन्हें उत्तर भारतीय संगीत में क्रमानुसार सा, कोमल रे, शुद्ध रे, कोमल ग, शुद्ध ग, शुद्ध म, तीव्र म, प, कोमल ध, शुद्ध ध, कोमल नि तथा शुद्ध नि कहा जाता है। ये स्वर 12 ही इसलिए हैं क्योंकि सामान्य मनुष्य के कान इन 12 ध्वनियों को ही अलग-अलग पहचानने में सक्षम हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने इनके मध्य 12 के स्थान पर 22 ध्वनियों का होना स्वीकार किया है जिन्हें शास्त्रों में 'श्रुति' कहा गया है। ऐसी मान्यता है कि नियमित अभ्यास तथा प्रयास के द्वारा इन ध्वनियों को पहचानकर उनमें विभेद किया जा सकता है। अतः वृहद रूप में एक सप्तक के मध्य 22 स्थान 'संगीतोपयोगी' कहे जा सकते हैं। 'सा' तथा 'प' अचल स्वर इसलिए हैं क्योंकि उनकी विकृति हेतु सप्तक पर कोई स्थान रिक्त नहीं रहता। 'प' को अपने स्थान पर थोड़ा ऊँचा या तीव्र करने पर वह 'कोमल ध' हो जाएगा तथा नीचे करने पर वह तीव्र 'म' हो जाएगा। इसी प्रकार तीव्र 'सा' को ऊँचा करने पर वह 'कोमल रे' हो जाएगा तथा नीचा करने पर 'शुद्ध नि'। अतः आवृत्ति का बढ़ता क्रम संगीत के स्वरों की उत्पत्ति का आधार है।

तारता अथवा तारत्व के अतिरिक्त संगीत में तीव्रता भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जिस प्रकार तारता नाद उत्पन्न करने वाली वस्तु की आवृत्ति पर निर्भर है, उसी प्रकार तीव्रता उसके कम्पन विस्तार पर। तानपुरे या सितार पर कसे किसी तार को जितना अधिक कसते जाएँगे, उसके तारत्व में उतनी अधिक वृद्धि होती जाएगी तथा ढीला करने पर तारत्व कम होता जाएगा। इसके विपरीत तारों पर जोर से आघात करने पर हमें आवाज तेज सुनाई देगी अर्थात उसकी तीव्रता में वृद्धि हो जाएगी, किंतु तारत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः गायन पद्धति में तारत्व जहाँ गले के भारीपन अथवा पतलेपन से संबंधित है वहीं तीव्रता आवाज के तीव्र तथा मंद होने से। कोई नवीन साधक जब स्वरों की साधना करता है तब कई बार स्वर ऊँचा करने के स्थान पर वह अपनी आवाज को ऊँचा कर देता है, ऐसा सिर्फ तारता तथा तीव्रता की अनभिज्ञता के कारण होता है, अतः संगीत साधक के लिए यह आवश्यक है कि इनके पीछे के विज्ञान को समझकर ही वह अपनी साधना आरंभ करे।

प्रकृति में सभी ध्वनियाँ भिन्न हैं, इसका कारण उनके गुणों में अंतर होना है। भिन्न गुणों के कारण ही हम दो वस्तुओं की ध्वनियों में विभेद कर पाते हैं। मंच पर जब अनेक वाद्ययंत्र बज रहे हों तब कलावंत सारे उपकरणों को आपस में मिलाते हैं जिसका वैज्ञानिक अर्थ है, उनकी तारता को समान कर लिया गया है। समान तारत्व होने के बावजूद सामान्य व्यक्ति भी भिन्न-भिन्न वाद्ययंत्रों की ध्वनियों में विभेद कर सकता है जिसका कारण तारता एक हो जाने पर भी दोनों के गुणों का भिन्न होना है।

वस्तुतः संगीत एक कला है। कलाएँ अनुभूति का विषय हैं, इसलिए विज्ञान कला के केवल भौतिक पक्ष को ही व्याख्यायित करने में सफल रहा है। कोई भी कला वास्तव में विज्ञान के द्वारा परिभाषित नहीं की जा सकती, वरन् विज्ञान केवल इसके नियमों तथा तत्वों को ही परिभाषित कर सकता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि कलाओं के तत्व, विज्ञान का अनुसरण अवश्य करते हैं, किंतु कला के क्षेत्र में इसका अधिकार गौण है।

स्वाधीनता आंदोलन में असम का पहला शहीद : मणिराम देवान

सन् 1857 के सिपाही विद्रोह के पहले शहीद मणिराम देवान के आत्म-त्याग तथा देशप्रेम की कहानी पर सर्वेश्वर चौधुरी के परिचालन तथा अपूर्व चौधुरी के संचालन में वेणुधर शर्मा के 'मणिराम देवान' ग्रंथ और प्रवीण बरुवा के 'मणिराम देवान' नाटक पर चित्र-नाट्य, संवाद को लेकर लाखों रुपये खर्च करके 'मणिराम देवान' फिल्म का निर्माण किया गया था, जिसका संगीत परिचालन किया था दादा साहेब फाल्के पुरस्कार प्राप्त डॉ. भूपेन हाजरिका ने। इस फिल्म का गीत 'बुकु हम् हम् करे मोर आई' बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था, जो बाद में हिंदी फिल्म 'रूदाली' में भी 'दिल हम हम करे घबराय' गीत के रूप में अपनाया गया था। यह फिल्म 10 जनवरी, 1964 को एक साथ चार सिनेमाघरों में प्रदर्शित की गई थी। 'मणिराम देवान' फिल्म को राष्ट्रपति द्वारा 'रजत पदक' प्राप्त हुआ था। असम की लोक-संस्कृति में भी उनकी जीवनगाथा को लेकर एक गीत का उद्भव हुआ है जिसे 'मणिराम देवान गीत' भी कहा जाता है। इस गीत को असम इतिहास के मालिता में लोक-संस्कृति के रूप में विशेष स्थान दिया गया है।

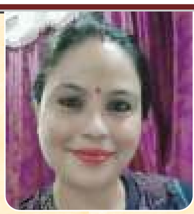

डॉ. वाणी बरठाकुर 'विभा'

जन्म : 11 फरवरी, तेजपुर।

संप्रति : शिक्षिका (आर्मी पब्लिक स्कूल, तेजपुर, असम)।

सम्मान : साहित्य सारस्वत, सृजन सम्मान (पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी), डॉ. महाराज कृष्ण जैन स्मृति सम्मान (राष्ट्रीय हिंदी विकास सम्मेलन), विद्यावाचस्पति सम्मान (विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ)।

प्रकाशन : मनर जयेइ जय (असमिया अनुवाद), स्वरचित काव्य संग्रह 'वर्णिका' (हिंदी), आतुर शब्द, पूर्वोत्तर की काव्य यात्रा, वृंदा, ननिकाला सखी संग्रह आदि साझा संग्रह सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : ई-मेल : banibarthakur55@gmail.com

स्वाधीनता आंदोलन में असम के प्रथम शहीद मणिराम देवान को वर्तमान में कोई भी प्राधान्यता नहीं दी जा रही है, जैसे नई पीढ़ी उन्हें जानती तक नहीं, और तो और वर्तमान में उनकी न ही जयंती मनाते हैं और न ही पुण्यतिथि पर उन्हें स्मरण कर रहे हैं। इस महान शहीद को जैसे लोग भूल गए हैं। आइए, आज हम असम के इस महान व्यक्ति तथा स्वतंत्रता आंदोलन में असम के पहले शहीद मणिराम देवान के बारे में जानते हैं।

विश्व प्रसिद्ध सिपाही विद्रोह (1857) के असम के पहले शहीद, असम इतिहास का एक परिचित नाम है—मणिराम देवान। मणिराम देवान बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति रहे। वे एक प्रकाशक, साहित्यकार, उद्योगपति तथा एक विप्लवी थे। उनका जन्म 27 अप्रैल, 1806 को असम राज्य के शिवसागर जिले के चारिंग में हुआ था। उनके पिता रामदत्त दोलाकाषरीया बरुवा और माता कौशल्या थीं। मणिराम देवान के पूर्वज बहुत ही रईस थे। मणिराम देवान का पूरा नाम था—मणिराम दत्त बरभांडार बरुवा देवान। उनके जन्म के कुछ दिन बाद ही मान ने असम आक्रमण कर दिया। अपने प्राण रक्षा हेतु स्वर्गदेउ (राजा) पुरंदर सिंह के साथ मणिराम देवान के पिता रामदत्त परिवार सहित बंग देश के चिलमारी चले गए। मणिराम देवान का शैक्षिक जीवन वहीं चिलमारी में ही प्रारंभ हुआ। वहाँ उन्हें नवद्वीप के घरेलू शिक्षक ने शिक्षा प्रदान की। प्रारंभिक शिक्षा वहीं पर प्राप्त करने के बाद उनका पूरा परिवार गोवालपरा चला आया। आगे की शिक्षा उन्होंने वहीं प्राप्त की। मणिराम देवान ने इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि सभी विषयों पर कुशलता दिखाई। रईस परिवार के होने के कारण

उनके पूर्वज से उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें काफी संपत्ति प्राप्त हुई। इसके अलावा उन्हें राजनीति तथा प्रशासनिक विषय का अच्छा ज्ञान था जिसके कारण ब्रिटिश सरकार की नजर उन पर पड़ी और अपने गुणों के बल पर उन्हें ब्रिटिश सरकार के उच्च पद पर आसीन अधिकारी के पास आने का अवसर मिला। मान को भगाने के लिए डेविड स्कॉट पहली बार असम आया, यानी कि पहले आंग्ल-बर्मा युद्ध के समय में डेविड स्कॉट को असम के भूगोल के बारे में राह दिखाने वाले व्यक्ति थे, मणिराम देवान। मणिराम देवान असम के भौगोलिक,

"असम चाय कंपनी का दीवान पद त्याग देने के बाद ब्रिटिश सरकार को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए उन्होंने जोरहाट में 'चिनामरा' और 'चेंगलुंग' नामक दो चाय बागान स्थापित किए। चाय बागान स्थापित करने के बाद मणिराम देवान का नाम तेजी से उभरने लगा। उनकी चाय की पत्तियों की कीमत बढ़ने लगी। इससे अंग्रेजों को भय हो गया और वे उनके चाय बागानों को बरबाद करने की कोशिश करने लगे।"

अर्थनीति तथा राजनीतिक व्यवस्था के बारे में ब्रिटिश सरकार को जानकारी देकर उनके विश्वसनीय हो गए। सन् 1828 में उजनी असम (Upper Assam) के पोलिटिकल एजेंट कैप्टेन निउभिल ने मणिराम देवान की कार्य दक्षता देखकर उन्हें सिरस्तादार (तहसीलदार) पद पर नियुक्त किया। वे अपनी पारदर्शिताओं से ब्रिटिश सरकार के कोषागार धन से भरते रहे। मणिराम देवान ने लगान संग्रह करने के लिए नई-नई नीतियाँ अपनाई। उनकी इन नीतियों के कारण सन् 1827-28 में उजनी असम में लगान 38,836 रुपये से बढ़कर 1829-30 में एक लाख रुपये तक हो गई। इन्हीं कारणों से ब्रिटिश सरकार उनकी तारीफ करते नहीं थकती थी। 24 फरवरी, 1826 को यानदाबु संधि के बाद ब्रिटिश सरकार ने मान को भगा दिया। असम में शांति प्रतिस्थापित करने के कारण मणिराम देवान ने अंग्रेजों की तुलना देवराज इंद्र के साथ की थी। असम में ब्रिटिश शासन हजारों साल रहना चाहता था। उस समय आंदोलन कर रहे क्रांतिकारियों से वे घृणा करते थे। मणिराम देवान ने पियलि फुकन, गोमधर कुंवर आदि देशप्रेमियों को कठोरतम सजा देने का निवेदन किया था।

अंग्रेजों ने 09 मार्च, 1833 को स्वर्गदेउ पुरंदर सिंह को उजनी असम के ब्रिटिशाधीन राजा बनाया। राजा पुरंदर सिंह के प्रशासन में मणिराम देवान को बरभांडार और मुख्य परामर्शदाता के पद पर नियुक्त किया गया, जिसे 'कलिता राजा' भी कह सकते हैं। स्वर्गदेउ पुरंदर सिंह और ब्रिटिश के समन्वयक थे मणिराम देवान। राजा पुरंदर सिंह ने मणिराम देवान को लगान समूह और मौज़ा देख-रेख का दायित्व सौंपा। एक बार मणिराम देवान काशीनाथ तामुली और लथौ खारघरीया के साथ लालबंदी के डेढ़ लाख रुपये लेकर बंग देश गए, किंतु पैसा अंग्रेजों को नहीं सौंपा। फलस्वरूप 50,000 रुपये तीन साल के बकाया दिखाकर 26 सितंबर, 1838 को पुरंदर सिंह से उजनी असम का सिंहासन छीन लिया। पुरंदर सिंह से अधिकार छिन जाने के कारण मणिराम देवान का भी पद नहीं रहा। उच्च शिखर तक जाने की लालसा लिए मणिराम देवान ने कोलकाता जाकर डिप्टी गवर्नर थॉमस कैम्पवेल राबर्टशन से भेंट करके अहोम राजवंशों के किसी एक कुँवर को उजनी असम का राजा नियुक्त करने के लिए अनुरोध किया और यह भी कहा कि किसी और को नियुक्त करना नहीं चाहते हों तो उसे ही राजा पद पर नियुक्त कर सकते हैं जिसके बदले में वो तीन साल के लालबंदी के पैसे (डेढ़ लाख रुपये) देने के लिए तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नियुक्त करने का वादा किया, मगर शिवसागर के नवनियुक्त प्रिंसिपल असिस्टेंट लेफ्टिनेंट ब्रॅडी ने मणिराम देवान को सिर्फ तीन मौज़ा देकर बाकी सब छीन लिया। अंग्रेजों ने 01 जून, 1839 को 600 रुपये पगार के हिसाब से मणिराम देवान को असम चाय कंपनी के दीवान पद पर नियुक्त किया। असम की मिट्टी तथा तौर-तरीके के बारे में संपूर्ण जानकारी होने के कारण उनके नेतृत्व में असम चाय कंपनी दिन दूनी-रात चौगुनी तरक्की

करने लगी। सन् 1844 में ब्रिटिश सरकार ने मणिराम देवान की पगार में से दो सौ रुपये घटाकर एक और दीवान नियुक्त कर दिया। इस कारण से मणिराम देवान ने असंतुष्ट होकर सन् 1845 में दीवान पद त्याग दिया।

मणिराम देवान भारत के पहले चाय कृषक

मणिराम देवान ने ही चिंगफौ गामजान से चाय के बारे में जानकारी प्राप्त कर राबर्ट ब्रुश को इस विषय के बारे में अवगत कराया। असम चाय कंपनी का दीवान पद त्याग देने के बाद ब्रिटिश सरकार को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए उन्होंने जोरहाट में 'चिनामरा' और 'चेंगलुंग' नामक दो चाय बागान स्थापित किए। चाय बागान स्थापित करने के बाद मणिराम देवान का नाम तेजी से उभरने लगा। उनकी

चाय की पत्तियों की कीमत बढ़ने लगी। इससे अंग्रेजों को भय हो गया और वे उनके चाय बागानों को बरबाद करने की कोशिश करने लगे। ब्रिटिश सरकार ने कम पैसे में मणिराम देवान को जमीन देने से इनकार कर दिया। उनके जमीनों पर ज्यादा लगान लगाने और शिवसागर के नए प्रिंसिपल असिस्टेंट चार्ल्स हॉलरयद द्वारा सन् 1951 में तीन मौज़ा छीन लेने के कारण मणिराम देवान एक आम आदमी बन गए। इससे उनका हृदय अंग्रेजों के प्रति घृणित हो उठा। सब-कुछ जान लेने के बाद अंग्रेज मणिराम देवान को अनदेखा करने लगे। जब असम में एंड्रयू मिल्स आया तब उसने कंदर्पेश्वर सिंह को चारिंग का राजा नियुक्त करने के लिए अनुशंसा की। मगर अंग्रेजों ने उन्हें मणिराम देवान को एक चतुर, लेकिन अविश्वसनीय तथा षड्यंत्रकारी व्यक्ति कहकर सावधान किया। इसके बाद अंतिम बार मणिराम देवान ने कोलकाता जाकर उजनी असम के शासन का दायित्व ब्रिटिश शासनाधीन राजा के रूप में कंदर्पेश्वर सिंह को नियुक्त करने के लिए लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जॉन कैम्पबेल से निवेदन किया। लेकिन वहाँ कोई भी आशा न देखकर 06 मई, 1857 को मणिराम देवान ने गवर्नर जनरल से निवेदन किया। मगर कुछ काम न होता देख आवेदन-निवेदन को छोड़कर विद्रोह करने का निर्णय लिया।

मणिराम देवान गठिया रोग से ग्रसित होने के कारण चिकित्सा के लिए कोलकाता गए थे। उसी समय भारतीय सिपाही विद्रोह की आग में जल रहे थे। सिपाहियों के दिल्ली अधिकार की खबर सुनकर मणिराम देवान बहुत आनंदित हुए और असम में अंग्रेजों के खिलाफ क्या किया जाए, उसकी योजनाएँ बनाने लगे। उन्होंने कोलकाता में रहकर ही चारिंग राजा कंदर्पेश्वर सिंह, पियलि बरुवा और असम के कई प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क किया। वे सभी मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ योजनाएँ तैयार करने लगे। उसी समय कोलकाता से एक विश्वसनीय बांग्ला व्यक्ति मधु मल्लिक को परामर्श प्रदान करने के लिए असम भेज दिया गया। तभी मणिराम देवान के नेतृत्व में असम के लोग अंग्रेजों के खिलाफ संगठित हुए। मणिराम देवान के आदेश से ही पियलि बरुवा ने असम में रह रहे भारतीय सिपाहियों को अस्त्र-शस्त्र, खाद्य-वस्त्र इत्यादि एकत्रित करने में मदद की। इसके अलावा महावर मुक्तियार, मायाराम नाजीर, बहादुर गाँवबूढ़ा, प्रमुख आलि, दुतिराम बरुवा आदि ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह शुरू कर दिया। चारिंग कंदर्पेश्वर सिंह का राजभवन विद्रोह चर्चा का केंद्र बन गया। मणिराम देवान के निर्देश पर विद्रोह पर योजनाएँ बनाई गईं। असम के सिपाही भी अंग्रेजों के विरोध में मणिराम देवान के साथ हो लिए। योजनानुसार दूर्गा पूजा के दिन अस्त्र-शस्त्र के साथ मणिराम देवान कोलकाता से असम आने वाले थे और दशमी के दिन सिपाहियों के साथ मिलकर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह करने वाले थे, लेकिन इसकी भनक ब्रिटिश सरकार को अगस्त महीने के बीच में ही लग गई थी। अंग्रेजों के अनुसार, मणिराम देवान द्वारा भेजी गई चिट्ठी दरोगा हरनाथ पर्वतिया बरुवा के हाथ लगी और उन्होंने उसे ले जाकर अंग्रेज अधिकारी को सौंप दिया। विद्रोह के बारे में जानकारी पाकर 07 सितंबर, 1857 को ब्रिटिश सरकार ने चारिंग राजा कंदर्पेश्वर सिंह को गिरफ्तार कर लिया और कोलकाता स्थित आलिपुर कारागार भेज दिया। उसी समय मणिराम देवान को भी गिरफ्तार करके उसी कारागार में रखा गया। साथ ही, पियलि बरुवा, बहादुर गाँवबूढ़ा, दुतिराम बरुवा, मधु मल्लिक, फर्मुद आली और कई लोगों को गिरफ्तार कर लिया। ऐसे ही असम में सिपाही विद्रोह का अंत हुआ। सन् 1857 के अंत में विचार के लिए मणिराम देवान को

जोरहाट लाया गया। विचार के आधार पर मणिराम देवान और पियलि बरुवा को राजद्रोही ठहराया गया और मृत्युदंड की सजा सुनाई गई। बाकी साथियों की सारी संपत्ति छीनकर कालापानी अर्थात अंडमान भेज दिया। चारिंग राजा कंदर्पेश्वर सिंह को नौकरी से सेवानिवृत्ति देकर नजरबंद कर दिया गया। 26 फरवरी, 1858 को मणिराम देवान को जोरहाट नगर के बीचों-बीच फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

मणिराम देवान न केवल स्वतंत्रता आंदोलन में असम के पहले शहीद थे, बल्कि वे पहले चाय कृषक बनकर आने वाली पीढ़ी को स्वावलंबी बनने की राह दिखा गए। उनकी पुस्तक 'बुरञ्जी विवेक रत्न' (असम की इतिहास) दो खंडों में है। इस पुस्तक में असमिया भाषा के साथ-साथ फारसी, उर्दू, बांग्ला, अंग्रेजी और संस्कृत आदि भाषाएँ हैं। इससे पता चलता है कि वे कई भाषा जानते थे।

कोलकाता से प्रकाशित 'समाचार दर्पण' में उन्होंने एक लेख लिखा था। इसके अलावा लंदन में अंग्रेजी समाचार पत्र में लेख लिखने वाले पहले असमिया व्यक्ति थे मणिराम देवान। तो आइए आज हम असम के ऐसे व्यक्ति को पुनः स्मरण करें। उनके आदर्शपूर्ण कर्म को घर-घर पहुँचाएँ और नई पीढ़ी को उनके बारे में जानकारी दें। असम में ही नहीं, भारतवर्ष में जगह-जगह पर उनके स्मारक बनें।

'आजादी के अमृत महोत्सव' के अंतर्गत आजादी के संग्राम में बलिदान देने वाले अल्प ज्ञात या गुमनाम क्रांतिकारियों की चर्चा यहाँ की गई है। हम एक वर्ष तक महोत्सव को मनाते हुए पत्रिका के प्रत्येक अंक में ऐसे ही गुमनाम क्रांतिकारियों पर लेखों का प्रकाशन करेंगे, जिसकी शुरुआत इस अंक में की गई है।

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **बाल्मीकि प्रसाद सिंह**

अनुवादक : **दीपाली ब्राह्मी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 380

मूल्य : रु. 455/-

21वीं सदी : भूराजनीति, लोकतंत्र और शांति

यह पुस्तक लेखक, प्रशासक और चिंतक बाल्मीकि प्रसाद सिंह की मूल अंग्रेजी पुस्तक 'द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी जीओ-पॉलिटिक्स, डेमोक्रेसी एंड पीस' का हिंदी अनुवाद है। मुख्यतः यह एक विचारपरक पुस्तक है, किंतु इसमें लेखक के संस्मरण के कुछ अंश भी हैं। दलाई लामा ने पुस्तक के प्रति अपनी शुभकामना प्रकट करते हुए कहा है कि लेखक ने इसमें आज के युग में बहुलता, विज्ञान एवं आध्यामिकता, लोकतंत्र, अच्छी शासन प्रणाली एवं पारिस्थितिकी के महत्व की खोज की है। लेखक के अनुसार, "इस बहुग्राही और विस्तृत पुस्तक का मूल संदेश 21वीं सदी में शांति एवं एकता है...हमें ऐसे तरीके खोजने होंगे जो विश्व में शांति एवं सामंजस्य पैदा करें... ।"

विश्व में शांति और सद्भाव के लिए लेखक ने एक नया दृष्टिकोण दिया है, जिसे 'बहुधा' कहा गया है। लेखक के अनुसार, "बहुधा दृष्टिकोण विविधता के पर्व के साथ-साथ मस्तिष्क की एक प्रवृत्ति है जो दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण का आदर करती है। लोकतंत्र तथा बातचीत इस दृष्टिकोण के मुख्य बिंदु हैं।" बहुधा शब्द ऋग्वेद की सूक्ति "एकम् सद विप्र बहुधा वदन्ति" से लिया गया है। इस वाक्य का अर्थ है, सत्य एक है, विद्वान इसे भिन्न-भिन्न नामों से बुलाते हैं। बहुधा दृष्टिकोण विविध धर्मों, मतों और राष्ट्रों के बीच संवाद तथा सह-अस्तित्व का समर्थन करता है।

भारत सदियों से विभिन्न विचारों के सामंजस्य की भूमि रहा है। यहाँ आने वाले विभिन्न समुदाय आपस में घुल-मिल गए और भारतीय संस्कृति को विश्व में स्वीकृति मिली। लेखक का कहना है, "परंपरागत रूप से भारत नए विचारों का निर्यातक रहा है, जिसमें मानव रचनात्मकता के विभिन्न क्षेत्र शामिल हैं—धर्म, कला, संगीत, पुराण-शास्त्र, भाषा, साहित्य, गणित, व्याकरण, वास्तुशास्त्र, प्रौद्योगिकी और खगोल शास्त्र।" भारत भविष्य में भी विश्व के नेतृत्व की क्षमता रखता है।

हिमालयी क्षेत्र में पर्यावरण संबंधी मुद्दे अध्याय में भारत के संवेदनशील पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्रों के सामाजिक एवं राजनीतिक पहलू तथा पारिस्थितिकी पर विचार-विमर्श है। लेखक मानता है कि हिमालय पर्वतमाला के ग्लेशियरों और इनके द्वारा बनाई गई नदियों का संरक्षण और प्रबंधन 21वीं सदी में मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। लेखक ने हिमालयी क्षेत्र में जैव-विविधता के संरक्षण का महत्व बताया है। वह इस क्षेत्र में शांति और राजनीतिक स्थिरता के प्रति आशावादी है। इस अध्याय को विश्व में पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में देखा जा सकता है।

लेखक के अनुसार, शिक्षा मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है, और यह उसका स्वयं को तथा अपनी संतानों को दिया जाने वाला सबसे महान उपहार है। अच्छी शिक्षा समावेशी, जीवन पद्धति तथा विज्ञान एवं धर्म में संतुलन को बढ़ावा देती है। शिक्षा का इस्तेमाल आजीविका के साधन के रूप में ही नहीं, बल्कि सामंजस्य के साधन के रूप में होना चाहिए। ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो शांति और प्रगति के अनुकूल निर्णय लेने वाले नागरिकों का निर्माण करे। लेखक ने नेल्सन मंडेला को उद्धृत किया है। मंडेला ने कहा था—"शिक्षा वह सर्वाधिक शक्तिशाली हथियार है, जिससे आप संसार को बदल सकते हैं।"

लेखक 21वीं सदी की प्रमुख चुनौतियों के रूप में पर्यावरण क्षय, हथियारों की होड़, धार्मिक उग्रवाद, गरीबी और असमानता की चर्चा करता है। इन समस्याओं के समाधान में संयुक्त राष्ट्र संघ की क्या भूमिका रही है और भविष्य में क्या हो सकती है, इस पर लेखक ने अपने विचार प्रकट किए हैं। भविष्य में यदि प्रौद्योगिकी का सभी देशों में समान प्रसार नहीं हुआ तो विकसित तथा अविकसित देशों में आर्थिक खाई और अधिक गहरी हो जाएगी। इस सदी के समक्ष ऐसी अनेक पर्वताकार चुनौतियाँ हैं, किंतु लेखक को आशा है कि भावी विश्व में अभूतपूर्व परिवर्तन होंगे और बहुलतावादी स्वभाव का प्रभुत्व होगा।

लेखक मानता है कि मानव व्यवहार और राष्ट्रों के व्यवहार के संबंध में कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती और दुनिया इतनी तेजी से बदल रही है कि भविष्य का सटीक पूर्वानुमान लगाना कठिन है। लेखक का दृष्टिकोण यथार्थवादी किंतु आदर्शोन्मुख है। वह भविष्य के प्रति आशान्वित है, लेकिन पूरी तरह आश्वस्त नहीं। उसका आशावाद अतीत और वर्तमान के विश्लेषण से उत्पन्न हुआ है।

पुस्तक हमें यह जानने को उत्सुक करती है कि आने वाली पीढ़ियों को किस तरह की दुनिया विरासत में मिलेगी। यह पुस्तक विश्व राजनीति और शासन प्रणाली में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए विशेष पठनीय है।

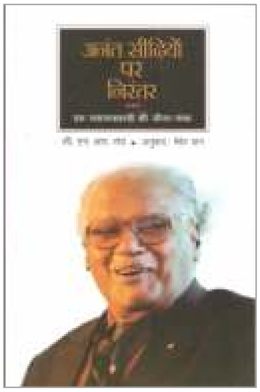

अनंत सीढ़ियों पर निरंतर

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **सी.एन.आर. राव**

अनुवादक : **मेहेर वान**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 240

मूल्य : रु. 230/-

यह पुस्तक विश्व-प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डॉ. सी.एन.आर. राव की आत्मकथा 'क्लाइंबिंग द लिमिटलेस लैडर' का हिंदी अनुवाद है। राव का स्वतंत्र भारत की वैज्ञानिक प्रगति में बहुत बड़ा योगदान है। इस किताब में उनके व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ देश में विज्ञान की उपलब्धियों और चुनौतियों की भी झाँकी है। राव को वैज्ञानिक शोध और प्रशासन का कई दशकों का अनुभव है। वे अपने अनुभव युवा वैज्ञानिकों को बाँटना चाहते हैं। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है।

पहले अध्याय में राव ने स्वतंत्रता-पूर्व के मैसूर रियासत में गुजरे अपने बचपन और 'बैंगलोर संस्कृति' का सरस वर्णन किया है। राव की प्रारंभिक शिक्षा माँ की देख-रेख में हुई। इसीलिए वे माँ को अपना प्रथम गुरु मानते हैं। एक बार उनके स्कूल में वैज्ञानिक प्रो. सी.वी. रमन आए। उनके भाषण का बालक राव पर गहरा प्रभाव पड़ा। राव लिखते हैं–'हो सकता है कि यही वो क्षण था, जब मैंने अवचेतन में वैज्ञानिक बनने का निर्णय ले लिया था।' भारतीय वैज्ञानिकों में वे जगदीशचंद्र बोस और रमन को अपना आदर्श मानते हैं।

राव ने बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी से एम.एससी. और अमेरिका के पर्ड्यू यूनिवर्सिटी से पी-एच.डी. की। उन्होंने बनारस को 'ज्ञान का तीर्थ' कहा है। वे लिखते हैं–"बनारस ने मुझे न सिर्फ शैक्षिक तौर पर अच्छी शुरुआत दी, बल्कि मेरा आध्यात्मिक मार्गदर्शन भी किया।'

स्वदेश और माता-पिता से प्रेम के कारण राव अमेरिका में नौकरी के अवसरों को छोड़कर 1959 में भारत आ गए। यहाँ उन्हें अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। उस समय देश में वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए बुनियादी सुविधाओं और उपकरणों का अभाव था। राव ने सॉलिड स्टेट केमिस्ट्री पर काम करना शुरू किया। तब यह विषय अपनी शैशवावस्था में था। भारतीय रसायनशास्त्री और राव के सहकर्मी सॉलिड स्टेट केमिस्ट्री को ज्यादा महत्व नहीं देते थे। वे अकसर राव का मजाक उड़ाते, लेकिन राव अपने विषय के प्रति प्रतिबद्ध रहे। आज वे भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया के सर्वाधिक सम्मानित वैज्ञानिकों में से एक हैं। उनका उच्च ताप पर अतिचालकता और नैनो विज्ञान के अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

राव को देश-विदेश के अनेकानेक पुरस्कार और मानद उपाधियाँ मिली हैं। उन्हें 'भारत रत्न' से नवाजा गया है। 1982 में वे एफ.आर.एस. यानी रॉयल सोसायटी, लंदन के सदस्य चुने गए। एक शिखर वैज्ञानिक होने के बावजूद राव में विनम्रता है। वे लिखते हैं–"कई ऐसे मौके आते हैं, जब मुझे अपनी योग्यता और उपलब्धियों पर शक होने लगता है, और फिर बुरी तरह से अपूर्णता का अहसास होने लगता है।"

राव ने भारतीय विज्ञान संस्थान के निदेशक और प्रधानमंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार जैसे अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर काम किया है तथा देश के विज्ञान-नीति निर्धारण में अहम योगदान दिया है। लेकिन वे मानते हैं कि उनकी जगह प्रयोगशाला में ही है और प्रशासन का हिस्सा बनने से उनके शोध कार्यों की गुणवत्ता प्रभावित हुई है। वे कहते हैं–"मैं उन सभी महत्वाकांक्षी युवा वैज्ञानिकों को, जो विज्ञान के क्षेत्र में मुकाम पाना चाहते हैं, पूरी ईमानदारी से प्रशासनिक कार्यों से दूर रहने की सलाह देना चाहता हूँ।"

राव ने विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाया है और विज्ञान अकादमियों के सदस्य रहे हैं। उनका अनुभव और वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यापक है। इस पुस्तक में उन्होंने विकासशील और अविकसित देशों में विज्ञान की पिछड़ी स्थिति पर चिंता प्रकट की है।

राव अपनी सफलता का श्रेय कड़ी मेहनत, समर्पण और शोध के लिए सही वैज्ञानिक समस्याओं के चुनाव को देते हैं। उन्होंने सहयोग तथा सद्भावना के लिए अपने परिजनों और मित्रों के प्रति आभार प्रकट किया है। पुस्तक के परिशिष्ट में उन्होंने अपने विशिष्ट वैज्ञानिक सहयोगियों के नाम बताए हैं।

राव को अध्ययन-अध्यापन और शास्त्रीय संगीत सुनना भी बहुत पसंद है। वे एक प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक हैं। उनकी अनेक पुस्तकें और सैकड़ों शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। शोध आलेख प्रकाशित करवाने में उनकी छात्र-जीवन से ही रुचि रही है। फैराडे की तरह उनका भी मानना है कि "विज्ञान में हम प्रयोग करते हैं, उसे पूरा करते हैं और प्रकाशित करवाते हैं।"

राव ने विज्ञान के प्रति समर्पित अपने जीवन को एक वरदान की तरह माना है। उनका कहना है, "वैज्ञानिक शोध कार्यों के जरिये खुशी पाने के मैंने सभी संभावित प्रयास किए हैं। मैं इससे बेहतर जीवन के बारे में नहीं सोच सकता। यह पुस्तक न केवल एक वैज्ञानिक की जीवन-यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव दिखाती है, बल्कि स्वतंत्र भारत में विज्ञान के विकास-पथ के मील के पत्थर भी दिखाती है।

वीरबाला तीलू रौतेली

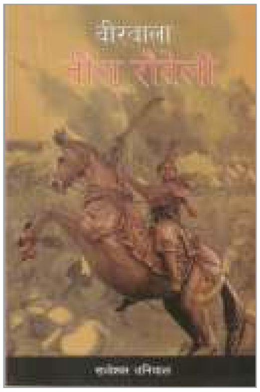

समीक्षक : **प्रेमलता मिश्र**
लेखक : **राजेश्वर उनियाल**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 74
मूल्य : रु. 110/-

कहा गया है कि पृथ्वी पर अगर कहीं देवत्व परिलक्षित होता है तो वह देवभूमि उत्तराखंड ही है और 'वीरबाला तीलू रौतेली' नाटक इसी देव भूमि पर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध वीरांगना 'तीलू रौतेली' के शौर्य, बलिदान, अदम्य साहस का ऐतिहासिक दस्तावेज है। इस अद्भुत शौर्य गाथा का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि उत्तराखंड आठवीं शताब्दी तक कत्यूरियों के शासनकाल के रूप में जाना जाता है। तत्पश्चात गढ़वाल में पवार एवं कुमाऊँ में कत्यूरियों व चंद वंश का शासन रहा।

कालांतर में जब कुमाऊँ में चंद वंश का प्रभाव बढ़ता गया तो कत्यूरी अपनी प्रभावहीनता के फलस्वरूप बिखर गए तथा कत्यूरी राजा धामशाही ने गढ़वाल एवं कुमाऊँ के सीमांत क्षेत्र खैरागढ़ में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा प्रजा पर अत्याचार करने लगे। फलस्वरूप गढ़वाल महाराजा फतेह शाह ने थोकदर भूप सिंह को इस क्षेत्र की सुरक्षा हेतु नियुक्त किया। थोकदार भूप सिंह अपने दो पुत्रों समेत रण में वीरगति को प्राप्त हुए। क्रोधाग्नि में जलती हुई भूप सिंह की विधवा मैणावती ने दुश्मनों के रक्त से ही पति एवं स्वजनों का तर्पण करने की भीष्म प्रतिज्ञा की और इस ऐतिहासिक शौर्य गाथा की कमान अपनी 15 वर्षीय पुत्री तीलू रौतेली को सौंपकर युद्ध में प्रशस्त करती हैं।

तीलू रौतेली अपने अदम्य साहस, पराक्रम एवं सूझ-बूझ से अथक सात वर्षों तक युद्ध कर माँ मैणावती के संकल्प को पूरा करती हैं। इसी ऐतिहासिक शौर्य गाथा का वर्णन 'वीरबाला तीलू रौतेली' नामक इस नाट्य कृति का अभीष्ट है। तीलू रौतेली ने धामशाही के सैनिकों को जिस साहस से सामना कर परास्त किया, वह आसान नहीं था, परंतु अपने आत्मविश्वास और माँ मैणावती के संकल्प को पूरा करने के लिए वीरबाला तीलू रौतेली पूरे साहस से लड़ीं और विजय को प्राप्त किया। विजय प्राप्त के पश्चात तीलू रौतेली अपने गाँव लौटती हैं। अनेक रमणीय दृश्य को निहारती हुई स्वयं को कर्तव्य से मुक्त पाती हैं। विश्राम के लिए जब वह नदी किनारे पत्थरों पर बैठी होती हैं तभी अचानक निहत्था पाकर रामू राजवार तीलू की हत्या कर देता है। 22 वर्षीय तीलू के लौटने का इंतजार कर रही उसकी माँ पुत्री के विजय पर गर्व से आह्लादित हो जाती है, परंतु पुत्री का मृतक शरीर देखकर व्यथित होती है। फिर स्वयं को सँभालती हुई बोलती है, "बेटी तीलू, तेरी गौरव गाथा घर-घर गूँजेगी, तूने मेरी कोख से जन्म लिया, मैं धन्य हूँ।"

तीलू ने अपने उद्देश्य को कर्तव्य समझा। अगर वह चाहतीं तो युद्ध जीतने के पश्चात साम्राज्ञी बनकर भोग करतीं, परंतु कर्तव्यपालन कर वह अमरत्व को प्राप्त हुई।

आज जब स्त्री सशक्तीकरण की बात चल रही है। स्त्री-विमर्श भी साहित्य में अपना स्थान बना चुका है और जब हम किसी अदम्य साहस से परिपूर्ण शौर्य गाथा एवं वीरांगना को देखते हैं तो रानी लक्ष्मीबाई का नाम सामने आता है, परंतु क्या वीरबाला तीलू रौतेली की चुनौतियाँ किसी भी मामले में कमतर नजर आती हैं तो हम क्यों इस वीरबाला को नजरअंदाज कर देते हैं।

आठवीं शताब्दी में ही एक अबोध तरुणी द्वारा इतना भीषण संग्राम क्या रानी लक्ष्मीबाई के लिए भी प्रेरणास्रोत नहीं रहा होगा। इस अद्भुत शौर्य गाथा का वर्णन यह बताने के लिए पूर्णरूपेण सक्षम है कि स्त्रियों का नायकत्व भी किसी पुरुष से कमतर नहीं। वीरबाला तीलू रौतेली की शौर्य गाथा स्त्री सशक्तीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका के एक मजबूत स्तंभ के रूप में परिलक्षित होती है।

डॉक्टर राजेश्वर ने तीलू रौतेली नाटक कृति को एक धरोहर के रूप में प्रस्तुत किया है। वीरांगना तीलू रौतेली की कथा में लेखक ने शिल्प विधान का सफल प्रयोग किया है। एक सुंदर युवती जो अपने भविष्य की कल्पना में डूबी हुई थी, उसकी वीरता की सच्चाई को संसार के सामने उजागर करने का साहसिक कदम उठाया है।

बापू एक कर्मयोगी

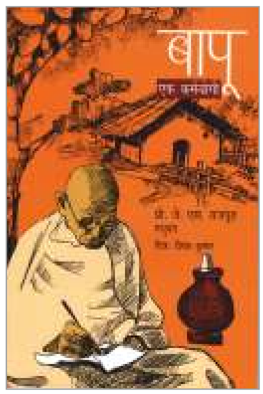

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**
लेखक : **प्रो. जे.एस. राजपूत एवं मधु पंत**
अनुवादक : **डॉ. सुधीर दीक्षित**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 68
मूल्य : रु. 65/-

भारत का शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जो महात्मा गांधी के नाम से परिचित न हो। वैसे तो उनका पूरा नाम मोहनदास कर्मचंद गांधी है, पर 'गांधी जी', 'महात्मा गांधी', 'बापू' उनके इतने प्रचलित नाम हैं कि कई पढ़े-लिखे लोग भी उनका पूरा नाम नहीं बता पाते हैं। अंग्रेजी सत्ता से भारत को मुक्ति दिलाने में बापू का अहम योगदान रहा है, पर किसी का व्यक्तित्व ऐसा नहीं होता, जिसके अंदर सिर्फ गुण-ही-गुण हों या सिर्फ दोष-ही-दोष हों

यानी गुण और दोष का मिला-जुला रूप है आदमी। भारत में बापू का व्यक्तित्व उस शिखर पर पहुँच गया है कि उनमें दोष निकालने वाला बहुत बड़े समूह का खलनायक बन जाता है। बापू को 'राष्ट्रपिता' के नाम से भी जाना जाता है और आजाद भारत की नोटों पर अंकित उनका चित्र उनकी महत्ता को दर्शाता है। सिर्फ भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में अनेक चिंतकों एवं विद्वानों ने उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को केंद्र में रखकर साहित्य की विविध विधाओं में पुस्तकें लिखी हैं और आज भी लिखी जा रही हैं।

न्यास द्वारा सद्यप्रकाशित पुस्तक 'बापू एक कर्मयोगी' में बापू के जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों को दर्शाया गया है। इसमें बापू से जुड़ी ऐसी कुल 16 कथाएँ हैं जिसे पद्य में भी प्रस्तुत किया गया है। एक तरह से यह नया प्रयोग है।

बापू से जुड़े महत्वपूर्ण पक्षों को कथा में प्रस्तुत किया है कई पुस्तकों के लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक पद्मश्री जगनमोहन सिंह राजपूत ने एवं उसी कथा को कविता में ढाला है बच्चों के लिए अभिनव, सृजनात्मक व सार्थक साहित्य लेखन करने वाले मधु पंत ने।

पुस्तक का पहला शीर्षक है—'कितने कुर्ते?' बापू का बच्चों से असीम स्नेह था। बच्चे उनसे बेझिझक अपने मन की बात पूछ लेते थे। बापू वस्त्र के नाम पर सिर्फ एक धोती धारण करते थे। एक बार एक बच्चा बापू से कहता है कि अपनी माँ से कहकर कई कुर्ते उनके लिए सिलवा देगा, पर बापू उससे कहते हैं कि मेरे तो चालीस करोड़ भाई-बहन हैं। कपड़े तो सभी के लिए चाहिए तभी में कुर्ता पहनूँगा। उस समय अविभाजित हिंदुस्तान की जनसंख्या चालीस करोड़ थी। बच्चा उनकी बात सुनकर हैरान हो जाता है।

समझ गया वह नन्हा बालक, बापू का है हृदय विशाल,
अपनेपन, भाई चारे की ऐसी कहीं न मिले मिसाल।

आश्रम में बच्चों के साथ टहलते हुए बापू बच्चों को कई ज्ञान की बातें सहजता से बता देते थे। 'स्वच्छता एवं मितव्ययिता' शीर्षक में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।

मितव्ययिता की, साफ-सफाई रखने की देते थे सीख,
कहते अपना-काम करो खुद, कभी न माँगों भिक्षा-भीख।

बापू नियम का कभी भी अतिक्रमण नहीं करते थे, यद्यपि कई अनुयायी उनसे कहते थे कि आप पर नियम लागू नहीं होने चाहिए, पर बापू यह कहकर कभी नियम का उल्लंघन नहीं करते थे कि हम आपसे बड़े हैं। इस तथ्य को दर्शाया गया है—शीर्षक 'नियम तो नियम' है।

किंतु नियम तो सदा नियम है, शाश्वत सबके लिए समान,
समय न रुकता सदा चलित है, पार न पाए जो अनजान।

बापू अपना निजी काम किसी और से नहीं करवाते थे। वे जहाँ जाते थे वहाँ के लोग उनकी सेवा करके अपने को गौरवान्वित महसूस करना चाहते थे, पर निजी स्तर का काम उन्होंने किसी से भी नहीं करवाया, चाहे उसने कितना भी आग्रह किया हो। 'अपना काम अपने आप' शीर्षक कविता में सत्य को दर्शाया गया है।

अपना काम स्वयं करने में, आखिर कैसा सोच विचार?
सर्व समर्थ बने हैं हम सब, बोले बापू यह सुविचार।

बापू बचपन से ही सत्यवादी और समय से काम करने के 'हिमायती' थे। 'सत्य-जीवन का मर्म' है इस शीर्षक कविता में देखें। कविता की इन दो पंक्तियों में कवि ने बापू के जीवन के माध्यम से बताया है कि वे झूठ के सहारे आगे बढ़ना नहीं चाहते थे।

शिक्षक ने जब किए इशारे, मोहन ने सब टाल दिए,
तब से उस बालक ने मन में, सत्य नियम सब पाल लिए।

जानवरों में बिल्ली अपना मल-मूत्र खुले में त्यागने के बजाय अपने पैरों से गड्ढा कर उसमें अपना मल-मूत्र त्यागने के बाद उसे अच्छी तरह ढँक देती है। 'स्वच्छता प्रेम' शीर्षक कथा एवं कविता में इस तथ्य को दर्शाया गया है। हर कथा के साथ दीपक कुमार का कथा के अनुकूल चित्रांकन बच्चों के मन में इस पुस्तक को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

कथा और उसको केंद्र में रखकर लिखी गई कविताएँ बहुत ही सरल-सहज शब्दों में हैं जिसे आसानी से समझ सकते हैं। समग्रता में यह पुस्तक किसी महापुरुष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को बच्चों तक पहुँचाने का नया प्रयोग है।

हमारी राजनीतिक व्यवस्था

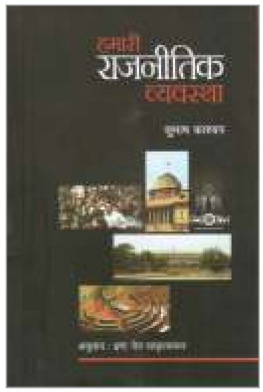

समीक्षक : **बीरेंद्र चौधरी**
लेखक : **सुभाष काश्यप**
अनुवादक : **इष्ट देव सांकृत्यायन**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 420
मूल्य : रु. 410/-

भारतीय राजनीतिक परंपरा पुरातनकाल से ही लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तरह काम करती आई है। यहाँ के राजा भी अपना शासनकार्य लोकतांत्रिक तरीके से चलाते थे। उनके इस कार्य में मदद के लिए सभासद और मंत्रिपरिषद होती थी। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि संसार जिन दिनों लोकतंत्र के महत्व को समझना तो दूर, जानता तक नहीं था, हमारे देश में गणतांत्रिक व्यवस्था कायम थी। लिच्छवी का गणराज्य आधुनिक लोकतंत्र की पाठशाला है। चाणक्य ने भी राजा के लिए सर्वजन सुलभ होने की बात कही थी अर्थात शासन व्यवस्था का पारदर्शी होना इसकी सबसे पहली शर्त है। जनता को उनका मौलिक अधिकार मिले, उसके इन अधिकारों पर

किसी प्रकार का कुठाराघात न हो, यह सुनिश्चित करना सत्ता का दायित्व है।

आज जब दुनिया के हर कोने में नागरिक अधिकारों को लेकर बहस छिड़ी है, ऐसे में हर व्यक्ति के लिए जरूरी है कि वह निश्चित तौर पर जाने कि जिस देश में वह रह रहा है, उसकी शासन व्यवस्था लोकतांत्रिक है, अलोकतांत्रिक है, मार्क्सवादी है, सैनिक तानाशाह के अधीन है या फिर राजशाही के तहत काम कर रही है। हालाँकि आज के समय में अपवादस्वरूप चंद गिने-चुने देशों को छोड़ दिया जाए तो हम कह सकते हैं कि राजशाही का दौर जा चुका है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर से चुनी हुई सरकारें शासन व्यवस्था का संचालन कर रही हैं। शासन संचालन के लिए प्रत्येक देश के अपने नियम, कानून और कायदे होते हैं। ये नियम और कानून कहीं लिखित हैं तो कहीं अलिखित। भारत की शासन व्यवस्था लिखित संविधान के अनुरूप कार्य करती है।

वर्तमान में भारतीय राजनीति में जो विद्रूपता आई है, लोगों के नागरिक और मौलिक अधिकारों को नए सिरे से परिभाषित किया जाने लगा है; उसे देखते हुए सुभाष काश्यप की पुस्तक 'हमारी राजनीतिक व्यवस्था' अत्यंत उपयोगी और पठनीय है। इस पुस्तक में उन तमाम पहलुओं को छुआ गया है जिसका एक भारतीय नागरिक होने के चलते हमारे जीवन से सीधा संबंध है। हमें अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए। हमारा संवैधानिक निकाय किस तरह से काम करता है, यह जानना हमारे लिए जरूरी है। हमारे राजनेता किन प्रारूपों के तहत काम करने को बाध्य हैं, इसकी जानकारी हमारे लिए आवश्यक है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, मंत्री, सांसदों और विधायकों के क्या अधिकार एवं कर्तव्य हैं, संविधान में उन्हें कितनी शक्ति दी गई है, पुस्तक में सारी बातों पर विस्तार से बात की गई है। संविधान में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका को समानांतर अधिकार क्यों दिया गया है, किस तरह ये निकाय अपना काम करते हैं, किन परिस्थितियों में किसकी प्रधानता है और किस हद तक है; इस पर विस्तार से चर्चा की गई है। न्यायपालिका, विधायिका अथवा कार्यपालिका के कार्यों का कब मूल्यांकन कर सकती है, कब उसे निर्देश दे सकती है, संवैधानिक मूल्यों के आधार पर कब पुनरीक्षा कर सकती है; इन तमाम पहलुओं को इसमें बताया गया है। संसद द्वारा पारित अधिनियम कब कानून बन सकता है और सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय उन अधिनियमों को कब निरस्त कर सकता है, यह भी बताया गया है। वित्त और धन विधेयक के बीच क्या अंतर है, कौन-सा विधेयक वित्त है और कौन-सा धन विधेयक, इस पर निर्णय प्रक्रिया, लोकसभा और राज्यसभा के कार्य एवं दायित्व, संसद के सत्रारंभ और सत्रावसान की प्रक्रिया, संसद द्वारा पारित विधेयक के मामले में राष्ट्रपति का अधिकार आदि बिंदुओं को बारीकी से स्पष्ट किया गया है। संवैधानिक निकाय मसलन—चुनाव आयोग, भारत के महाधिवक्ता एवं अन्य पद, भारत के नियंत्रक एवं महालेखक, संसद की समितियाँ आदि विषयों पर भी संबंधित अनुच्छेद के साथ विस्तार से चर्चा की गई है। ध्यान देने वाली बात यह है कि तमाम पहलुओं से संबंधित अनुच्छेदों की व्याख्या इस सरलता से की गई है कि राजनीति की थोड़ी-सी समझ रखने वाला व्यक्ति भी इसे आसानी से समझ सके।

देश की शासन व्यवस्था के संचालन में राजनीति से परे लोक सेवकों, नौकरशाहों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा-शर्त, वेतन एवं भत्ते आदि विषयों पर भी चर्चा की गई है। चूँकि भारत में नौकरशाह दो भिन्न प्रकार के प्रभावों का उत्पाद है : पुरानी औपनिवेशिक ब्रिटिश परंपराएँ और स्वतंत्रता के बाद के लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य व्यवस्थाओं की अपेक्षाएँ। पुस्तक में स्पष्ट उल्लेख है कि 'दो अखिल भारतीय सेवाओं—भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा, का सृजन 1946 में ब्रिटिश पद्धति पर ही हुआ। स्वतंत्रता की उपलब्धि और लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली की शुरुआत ने सिविल सेवाओं को पूरी तरह से कार्यपालिका और संसद के प्रति जवाबदेह बना दिया।' इस संबंध में अनुच्छेद 309, 310, 311, 124, 217, 317, 324, 148, 98, 187 आदि अवलोकनीय हैं। इस प्रकार संपूर्ण पुस्तक में विभिन्न अनुच्छेदों की सीमाओं सहित व्याख्या प्रसंगानुसार की गई है जिससे यह पुस्तक पठनीय बन गई है।

मूल संविधान और उसमें वर्णित अनुच्छेदों को पढ़ना और आसानी से समझ लेना सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं। राजनीति शास्त्र के छात्रों के लिए भी यह एक बोझिल विषय माना जाता है और कुछ हद तक इसमें सत्यता भी है, लेकिन इस पुस्तक में बोझिलता का आभास नाममात्र भी नहीं होता।

वंदना मुकेश : संकलित कहानियाँ

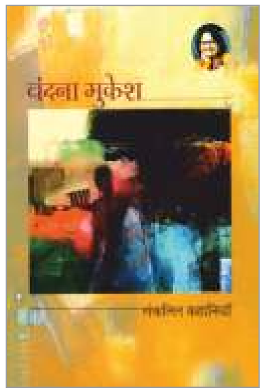

समीक्षक : **डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल**
लेखक : **वंदना मुकेश**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 98
मूल्य : रु. 125/-

अमर कथा शिल्पी मुशी प्रेमचंद अपनी कहानी 'लेखक' के अंत में लिखते हैं कि साहित्यकार का काम तो है दीपक की लौ की तरह जलते रहकर समाज में व्याप्त अंधकार को दूर करना। यशपाल ने कहा कि वह कहानियाँ मात्र मनोरंजन के लिए नहीं लिखते, उनका ध्येय तो पाठक के मन में एक वैचारिक कौंध पैदा करना होता है। यह सच है कि हर रचना का कुछ-न-कुछ कहना होता है, कोई-न-कोई संकेत होता है। आलोच्य

पुस्तक 'वंदना मुकेश : संकलित कहानियाँ' भी अपने अंदाज में मनोरंजन प्रदान करते हुए भी बहुत कुछ कह जाती हैं। वैसे तो संकलित 12 कहानियों के अधिकांश पात्र, स्थान एवं घटनाएँ भारतीय परंपरा से ही अनुस्यूत हैं, परंतु दो-तीन कहानियों में विदेश की गंध, खास कर बर्मिंघम की, भी मिलती है।

कहानियाँ पात्रों के मन की परतें धीरे-धीरे खोलती हैं, लेकिन कहानी के अंत तक पहुँचते हुए विस्फोटक मुद्रा धारणकर लेती हैं। अपने आस-पास के परिवेश से उठाई गई घटनाएँ संयोजन के यथार्थ एवं बुनावट की सहजता के कारण पाठक को अपने साथ बहा ले जाती हैं। संग्रह की पहली कहानी 'मशीन' आत्मसंवाद के माध्यम से दांपत्य जीवन में आए ठहराव की काव्यमय प्रस्तुति है। पति-पत्नी के बीच पसरा मौन शब्द संपदा से मुखरित हो उठता है। रिपोर्ताज की शैली में लिखी गई यह कहानी जीवन के मशीन हो जाने की व्यथा का वर्णन करती है जो दिनचर्या आज है, वही हू-ब-हू कल दोहराई जाएगी। 'छाँह' कहानी अलग जमीन पर लिखी गई है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हुए लेखिका ने ससुराल से नंगे पाँव आई लड़की को तपती सड़क पर उचक-उचक कर चलते दिखा कर नारी के प्रति हो रहे अन्याय को रेखांकित करना चाहा है। उसके पाँव में पड़े छाले को देखकर उसका ताया घनश्यामदास तड़प उठता है और अपनी पगड़ी से कपड़ा फाड़कर उसके पाँव के लिए पट्टी तैयार करता है। 'घर' कहानी किसी भी आम परिवार की कहानी हो सकती है। रोशन, वसुधा और उनके दो बच्चे—सात्विक और अपरा। गृहणी के अस्वस्थ होने पर पिता और बच्चे रसोई में बेतरतीब माहौल पैदा करते हैं, जो वसुधा को पसंद नहीं और वह नाराज हो जाती है। फिर तीनों मिलकर उसे मनाते हैं और रसोई को गृहणी की इच्छा के अनुरूप बना देते हैं।

'ऋण' बहुत ही मार्मिक कहानी है। अपनी विमाता की प्रताड़ना के कारण सुभाष नाम का युवक घर छोड़ देता है और वह गंतव्यहीन रेलगाड़ी में बैठ जाता है। रमानाथ नाम का एक अजनबी उसकी गाथा सुनकर उसे अपने घर, चेन्नई ले जाता है। उसका पालन-पोषण करता है और जब वह स्वावलंबी हो जाता है, तो वह अलग घर बसा लेता है। 20 साल बाद वह मुंबई में रमानाथ को देखता है, तो उत्साहित हो उठता है। फोन नंबर ले लेता है। उसने दो घर बनवाए थे और दोनों बेटों के नाम अपने जीते जी करवा दिए थे। बेटे पिता की देखभाल नहीं करते। वह पुणे में किराए पर घर लेने की बात सुभाष से करता है और सुभाष निर्णय कर लेता है कि यही वक्त है ऋण उतारने का। 'छोटी सी बात' कहानी एक बहुत ही समसामयिक समस्या पर आधारित है। निरंतर संपन्न हो रहे भारतीय समाज में विवाह-शादियों के प्रबंधन, दिखावे आदि में जो व्यवहारगत परिवर्तन आया है, उस पर यह तीखा कटाक्ष है। रमा और मोहन जी की बेटी सुप्रिया की शादी है। अनेक कमरे होटल में बुक हैं, तीन-तीन घर हैं जहाँ ठहरने की व्यवस्था है, परंतु हर व्यक्ति का रोष है कि मुझे स्टेशन पर गाड़ी नहीं भेजी, मेरे कमरे का स्नानघर साफ नहीं था, मुझे मेरी पसंद का खाना नहीं मिला। यहाँ तक कि रमा का भाई और भाभी भी यह कहकर शिकायत करते हैं कि हमें भी होटल में कमरा नहीं मिला। ऐसे ही हाल में रात बितानी पड़ी। पहले विवाह-शादी में रिश्तेदार हाथ बँटाने आते थे, परंतु अब मेहमानों की तरह आते हैं। बदलते रिश्तों पर निर्मम प्रहार।

वंदना मुकेश की कहानियाँ आम आदमी के दुख-दर्द की कहानियाँ हैं। छोटी-छोटी बातों को उठाकर लेखिका कलात्मक ताना-बाना बुनती हैं और रोचकता के साथ अपनी बात को अंत तक ले जाती हैं। कहानियों में बिखरे सूक्त वाक्य किस्सागोई की छौंक लगाते हैं यथा मुफ्त का चंदन, घिस मेरे नंदन। प्रवाहमयी भाषा वैचारिक कौंध बिखेरती हुई पाठक को बाँधे रखती है।

समीक्षा के प्रतिदर्श

(दो खंड)

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **देवशंकर नवीन**

प्रकाशक : श्रुति बुक्स, गाजियाबाद।

पृष्ठ : खंड-1 : 199; खंड-2 : 216

मूल्य : रु. 250/-(पेपरबैक संस्करण) प्रत्येक खंड

समीक्षा का आशय है किसी विषयवस्तु, घटना, गतिविधि इत्यादि को अच्छी तरह देखना, जाँचना-परखना। प्रत्येक तत्व का समग्रता में विवेचन करना ही समीक्षा है। इस दृष्टि से हमारी जिज्ञासा हो सकती है कि एक आदर्श समीक्षा का प्रतिदर्श क्या और कैसा होना चाहिए? इस दृष्टि से हमारे लिए ऐसी पुस्तकों का महत्व बढ़ जाता है जिनमें समीक्षा का आदर्श अथवा प्रतिदर्श प्रस्तुत किया गया हो। देवशंकर नवीन की पुस्तक 'समीक्षा के प्रतिदर्श' (दो भागों में) ऐसी ही पुस्तक है।

वास्तव में किसी विषयवस्तु में साहित्य के विविध तत्वों का दर्शन कर दूसरों के लिए उसे दृष्टव्य बनाना ही समीक्षा-कर्म है। 'समीक्षा के प्रतिदर्श' पुस्तक में सम्मिलित समीक्षाएँ इसी श्रेणी के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। इस पुस्तक में लेखक द्वारा समय-समय पर लिखी गई पुस्तक समीक्षाएँ संकलित हैं। इस संग्रह में भारतीय-पाश्चात्य साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों का विवेचन किया गया है। हालाँकि अधिकांश समीक्षाएँ भारतीय संदर्भों एवं कृतियों से ही संबंधित हैं। विभिन्न विधाओं में नाटक, कविता, कहानी, व्यंग्य, उपन्यास, आलोचना आदि कई महत्वपूर्ण पक्षों की ओर लेखक ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। पहले भाग में 37 एवं दूसरे भाग में परिशिष्ट के लेखों को मिलाकर कुल 50 समीक्षाएँ संकलित हैं।

पुस्तक के पहले खंड का आरंभिक समीक्षा-लेख है—'इस कहानी की जरूरत तो थी...।' इस शीर्षक के सहारे लेखक ने मन्नू भंडारी की संस्मरणात्मक कृति 'एक कहानी यह भी' का अध्ययन-विश्लेषण किया है। समीक्षक की राय है कि "इस कृति को एक औपन्यासिक वृत्तांत शैली में लिखी गई कहानी अथवा आत्मजीवनचरित के रूप में पढ़ा जा सकता है।" वास्तव में यह कृति मन्नू जी के जीवन के कई अनछुए पहलुओं को बड़ी ही कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करती है। लेखिका स्वयं इस कृति के केंद्र में है और उसके जीवन का देखा-भोगा सच पाठकों से साझा करना ही लेखिका का उद्देश्य है। इस कृति की समीक्षा में राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी के संबंधों का मन्नू जी के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर संकेत करते हुए समीक्षक ने लिखा है, "व्यक्ति मन्नू भंडारी, माँ मन्नू भंडारी, पत्नी मन्नू भंडारी, पड़ोसी मन्नू भंडारी का बहुत कुछ बिगड़ा, इसमें कोई शक नहीं, पर यदि लेखिका मन्नू भंडारी का कुछ बिगड़ा होता तो यह कृति कैसे आई होती?" समीक्षक का उद्देश्य यह इंगित करना है कि विपरीत परिस्थितियों में लेखन और निखरता है, धारदार बनता है। इस पुस्तक में व्याप्त ऐसे अनेक समीक्षा आलेख पाठकों को कृति को बेहतर ढंग से देखने-समझने का नजरिया तो देते ही हैं, साथ-साथ व्यक्ति-समाज और जीवन को भी ठीक ढंग से समझने की दृष्टि देते हैं। आधी सदी की जनतांत्रिक उपलब्धि, कमलेश्वर का कथा-प्रस्थान, पाकिस्तान की भयावह दास्तान, बड़े कवि की विराट फलक की कविताएँ, हिंदी व्यंग्य की मुकम्मल तस्वीर, साहित्यालोचन की दृष्टि, वाल्टर बेंजामिन का अनियोजित संकलन, खो देता है खुद को दरवाजा रास्ता होकर..., दायित्वबोध से भरा कथाकार काशीनाथ सिंह, कृष्ण को भी पश्चाताप हुआ था, कविता ही खोलेगी कपाट, बबूल वन में चंदन उगाने की जिद, मनुष्य की परिभाषा खोजता एक लेखक, नैतिक विरोध की उज्ज्वल कहानियाँ, कुछ संस्मरण, कुछ श्रद्धांजलि, कुछ चित्र आदि आलेख पहले भाग का विशेष आकर्षण हैं।

पुस्तक समीक्षा को कुछ लोग अलग ढंग से लेते हैं और कुछ लोग इसे एक समर्पण और कर्मनिष्ठ साहित्यिक दायित्व मानते हैं। ये दोनों प्रकार की समझ रखने वाले लोग मुझे लगता है कि आज ही नहीं हैं, बल्कि हमेशा रहे हैं। मदन सोनी जी के आलोचनात्मक निबंधों के संग्रह की समीक्षा करते हुए लेखक ने इसकी ओर इशारा करते हुए अपनी मान्यताओं को स्पष्ट रूप से रखा है। भारी-भरकम नामों से फ्लैप, भूमिका और विस्तृत भूमिका द्वारा अपनी बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन की प्रवृत्ति को लेखक गैर-जरूरी मानते हुए 'आलोचना की जटिलता' शीर्षक आलेख में लिखता है, "इस पुस्तक की समीक्षा करते समय समीक्षक को चार-चार परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है—अशोक वाजपेयी द्वारा फ्लैप पर घोषित मान्यता, प्रभात त्रिपाठी द्वारा लिखी गई भूमिका, लेखक द्वारा जारी भारी-भरकम प्राक्कथन और अंत में मूल पाठ का अवगाहन। मैं समझता हूँ कि किसी किताब को पाठकों के हाथ भेजने से पूर्व इतने घटाटोप की तैयारी बहुत कारगर नहीं होती। वास्तविक समीक्षक जो कोई होंगे, उन पर इन घोषणाओं का कोई असर नहीं हो सकता। हद से हद वे लेखक की घोषणा की कसौटी पर उनके आलेखों की परख कर सकेंगे। अंततः लेखक के निबंध ही उनके मूल्यांकन का निर्णायक आधार होगा।" समीक्षा कर्म समग्रता और स्पष्टवादिता का ही दूसरा नाम है, इसे ही हम नीर-क्षीर विवेक यानी दूध का दूध और पानी का पानी करने की कला कहते हैं।

पुस्तक के दूसरे खंड की समीक्षाओं में आईने के सामने खड़े लोग, दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद, हिंदी व्यंग्य का आइना, चुके हुए निशाने का व्यंग्य, प्राचीन वांग्मय : नई दृष्टि, असमानता का दस्तावेज, नई जमीन की तलाश, वर्चस्व के प्रतिरोध की संस्कृति, भरोसे की बलि, उज्ज्वल सपनों की खोज, अपेक्षाएँ और भी हैं, नैतिक पत्रकारिता की जरूरत, अतुल्य भारत की कृषि संवेदना, विवर्ण हो रही है जनजातीय संस्कृति, शोषितों के कोई लिंग और मजहब नहीं होते, इस उन्नति का क्या करें, चाकुओं का खीरे पर भरोसा आदि आलेख विशेष पठनीय हैं।

वास्तव में समीक्षा कर्म को किस कोण और गहराई से देखने-समझने की आवश्यकता होती है, इसको समझने के लिए यह पुस्तक अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। जिस गहराई और समग्रता में समीक्षक ने एक-एक कृति के बहाने एक विषय को क्रम से उठाया और अपनी समीक्षा में पिरोया है, वह बेहद प्रशंसनीय और सराहनीय है।

उर्मिला

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **कविता काणे**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 330

मूल्य : रु. 350/-

'उर्मिला' महाकाव्य रामायण का एक ऐसा पात्र है, जिस पर रामायण, रामचरितमानस और अन्य बड़े-छोटे ग्रंथों आदि में कोई विशेष चर्चा नहीं हुई। हाँ, मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में अवश्य ही 'उर्मिला' के चरित्र को विशेष रूप से प्रधानता दी है। प्रस्तुत पुस्तक 'उर्मिला' में लेखिका कविता काणे ने भी संभवतः 'साकेत' महाकाव्य की प्रेरणा से अथवा उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं से प्रभावित होकर नारी-चरित्र को प्रधानता दी है।

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मूल रूप से अंग्रेजी भाषा में लिखी गई इस पुस्तक का शीर्षक कविता काणे ने 'सीताज सिस्टर' के रूप में किया है। इसका मंतव्य स्पष्ट है कि उर्मिला की पहचान वास्तव में सीता से ही है। सीता का राम के साथ 14 वर्ष के लिए वन-गमन करना और उर्मिला का इन्हीं 14 वर्षों के लिए अपने पति लक्ष्मण की अनुपस्थिति में विरहाग्नि में जल-जलकर व्यतीत करना दोनों नारी-चरित्रों की विशेषताओं को उजागर करता है।

उर्मिला के पति लक्ष्मण के पास 14 वर्ष के वनवास-काल ज्येष्ठ भ्राता राम और भाभी की सेवा करके समय व्यतीत करने का अच्छा उद्देश्य था, लेकिन पति-वियोग का दुख सहती उर्मिला को लक्ष्मण किस उद्देश्य की पूर्ति हेतु महल में छोड़ आए थे? निश्चय ही एक पतिव्रता नारी के लिए पति के साथ कंटक-शैया पर शयन करना सुख का और पति से दूर रहकर महल में रहना बहुत बड़े दुख का कारण होता है। उर्मिला ने इस दुख को बड़े धैर्य, संयम और साहस के साथ सहन किया।

कविता काणे 'उर्मिला' के 'युद्ध' नामक अध्याय में सुमित्रा के द्वारा उस सच्चाई को सामने लाने का सफल प्रयास करती हैं, जिसे प्रकट करने में सभी संकोच करते हैं—"तुम्हारे अतिरिक्त सबने यही माना कि सत्य को अस्वीकार करना ही सर्वश्रेष्ठ नीति है। तुमने हमारा सत्य से सामना कराया। तुमने हमें सत्य का दर्पण दिखाया... इसलिए मुझे धन्यवाद मत दो प्रिय! मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। हम सब तुम्हें धन्यवाद देते हैं, हमें प्रसन्न और श्रेष्ठजन बनाने के लिए।"

उर्मिला इन शब्दों से अभिभूत हो गई। उसने सौम्यता से अपना हाथ महारानी के झुर्रियों वाले बूढ़े हाथों पर रख दिया और सहजता से कहा, "सौमित्र शीघ्र-अतिशीघ्र वापस आएँगे, यहाँ फिर प्रसन्नता से भरे दिन होंगे... अंततः हम उनके लायक तो हैं ही।"

वास्तव में रामायण के कई प्रसंगों को उर्मिला के नए और रोचक दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई कहानी है यह पुस्तक!

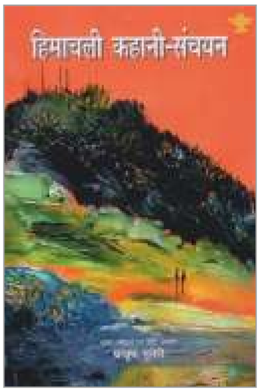

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

चयन, संपा. एवं

हिंदी अनुवाद : **प्रत्यूष गुलेरी**

प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 240

मूल्य : रु. 275/-

हिमाचली कहानी-संचयन

जो हो रहा है, जो हुआ या जो हो सकता है, कहानी इनके आस-पास होती है। अगर मामला किसी पहाड़ी प्रदेश का हो तो पहाड़ का लोक मानस, लोक जीवन, लोक संस्कृति, लोक विश्वास, लोक आस्थाएँ इन कहानियों में दिखाई देंगी। इसके साथ ही यहाँ कहानियों में अंधविश्वासों पर भी चोट दिखाई देती है। प्रेम और रूमानियत ऐसे तत्व हैं जो किसी भी कहानी में जीवंतता बनाए रख सकते हैं। लेकिन हिमाचल की कहानियों में प्रेम भी नितांत मौलिक स्वरूप में दिखाई देता है। यहाँ प्रेम में एक तरफ जहाँ आपको पहाड़ की खुशबू आएगी, वहीं दूसरी तरफ प्रेम का ऐसा रूप भी दिखाई देगा जो हमसे कोसों दूर है। कहानी-संचयन पढ़ते हुए बराबर यह अहसास होता रहा कि आखिर क्या वजह है कि हिमाचल में लिखी जा रही कहानियों में सहजता-सादगी बनी रहती है? क्या यह वहाँ का चरित्र है? यहाँ शिल्प और भाषा का चमत्कार आपको दिखाई नहीं देगा। कहानी अपने प्रवाह के साथ आपको बाँधे रखेगी। हिमाचली कथाकारों ने लोक विश्वासों, लोक आस्थाओं और लोकाचारों को अपना कथ्य चुना है।

अनंत आलोक की कहानी 'पापड़ा' एक ऐसी ही कहानी है। इसमें किसी और स्त्री के शरीर में मृत नायिका की आत्मा प्रवेश करती है और अपनी मृत्यु की कहानी बयान करती है। वह बताती है कि किस तरह उसके पति ने दूसरे विवाह के चक्कर में उसे जहर देकर मार डाला। वह अपनी सास पर भी हत्या में शामिल होने का आरोप लगाती है। अंत में नायिका अपनी बेटी की सुरक्षा और उसके लिए शिक्षा के प्रबंध की गारंटी के बाद अपने पति को माफ कर देती है। यह आशावाद है।

आत्माओं को बुलाकर असली हत्यारे का पता करवाना, जाहिर है कि हिमाचल प्रदेश का कोई अंधविश्वास होगा। अंधविश्वासों पर और भी बहुत-सी कहानियाँ हैं। रमेश मस्ताना की 'चूल्हे की पिछाड़ी का जंतर', आशा शैली की 'डाकिन', अशोक गौतम की 'धर्म की कीमत' ओम प्रकाश सारस्वत की 'पानी होती चट्टान' त्रिलोक मेहरा की 'कूहल का फूल' इसी मिज़ाज की कहानियाँ हैं। संग्रह की 44 कहानियों में कुछ प्रेम कहानियाँ भी हैं जो प्रेम को एक नया आयाम देती दिखाई पड़ती हैं। गिरिधर योगेश्वर की 'वह और मैं' कहानी बाहरी दुनिया में विवाहित जीवन जी रही नायिका की कहानी है, जिसके भीतर अतीत की एक प्रेम कहानी बल खाती रहती है। वह कॉलेज टाइम के उस प्रेमी को निरंतर जीती है, जिसके साथ वह जीना चाहती थी। लेकिन इस प्रेम कहानी में अतिरंजित नाटकीयता नहीं है। एकदम सादगी और सहजता से कहानी चलती रहती है। कहानी का अंत इस तरह होता है। नायिका कॉलेज के दिनों की पत्रिका निकालती है और अपने प्रेमी की लिखी कहानी पढ़ने लग जाती है। नायिका कहती है, "मैं जिंदा हूँ, खुश हूँ, साकार हूँ।" प्रेम का यह निराकार रूप बहुत कम देखने में आता है। द्विजेन्द्र मिश्र की कहानी 'कदरदान' एक शानदार प्रेम कहानी है। कहानी का नायक अपने टोले के साथ दूसरे

टोले की एक लड़की को देखता रहता है। लड़की भी उस लड़के को देखती है। सिर्फ आँखों के माध्यम से ही दोनों के बीच प्रेम किस तरह विकसित होता है, यह कहानी को पढ़कर समझा जा सकता है। अंत में जब नायक, नायिका के पिता से लड़की का हाथ माँगता है तो पिता कहता है कि वह लड़की एक हजार रुपये किलो देगा। नायक तुरंत तैयार हो जाता है। वजन करने के बाद लड़की 72 किलो की पाई जाती है। वह 72 हजार रुपये देकर लड़की को अपने साथ ले जाता है। लड़की के चेहरे पर आशाओं की, सुख के सपनों की लौ चमक रही थी। संग्रह में प्रेम कहानियाँ और भी हैं—देवराज डोगरा की 'नूरां', नवनीत की 'क्या पता', गौतम व्यथित की 'प्यार व्यवहार में सबूत क्या' व कृष्ण चंद्र महादेविया की 'जूठी पत्तल' व कई अन्य कहानियाँ हैं।

ऐसा नहीं है कि इस संग्रह में प्रेम कहानियाँ और अंधविश्वासों पर लिखी कहानियाँ ही हैं। सामाजिक एवं पारिवारिक रिश्तों पर भी यहाँ आपको अनेक कहानियाँ मिलेंगी। अमिता की 'दहलीज़', अरुण कुमार शर्मा की 'वो आठ रुपये', प्रेम भारद्वाज की 'वारस', कुलदीप चंदेल की 'पुरोहित', केशव चंद्र की 'बदल रहा सब-कुछ', पीयूष गुलेरी की 'ममता का फल', चंद्ररेखा डढवाल की 'अपनी शर्तों पर', तारा नेगी की 'माघी के किस्से' के अलावा और भी कई कहानियाँ हैं। इन कहानियों की खास बात यह भी है कि ये ईमानदार और नफासत से भरी हैं। रिश्वतखोरी, सिफारिश, भाई-भतीजावाद जैसी बुराइयों के शिकार और राजनेताओं के मुखौटे उतारती भी अनेक कहानियाँ इस संग्रह में हैं।

इस संग्रह को पढ़ना हिमाचल की साहित्यिक दुनिया को ईमानदारी से देखना है। पढ़कर लगता है कि आप हिमाचल की वादियों में घूम रहे हैं, लेकिन इन वादियों के दुख, तकलीफ, प्रेम, विरह भी इन कहानियों में दिखाई पड़ते हैं।

अँधेरे में टिमटिमाता चिराग : मलाला

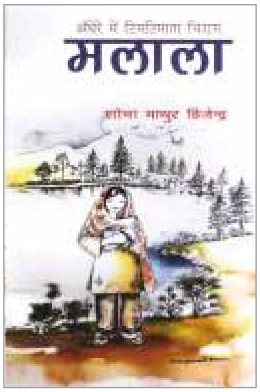

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**
लेखिका : **शोभा माथुर बिजेन्द्र**
प्रकाशक : प्रतिमा प्रकाशन, नई दिल्ली।
पृष्ठ : 68
मूल्य : रु. 125/- (पेपरबैक)

वर्ष 2014 में मलाला यूसुफजई को बच्चों के अधिकारों के प्रयास के लिए 'शांति का नोबेल पुरस्कार' दिया गया था। वह सबसे कम उम्र की शख्सियत हैं, जिन्हें 'नोबेल पुरस्कार' से नवाजा गया है। शोभा माथुर बिजेन्द्र द्वारा रचित पुस्तक 'अँधेरे में टिमटिमाता चिराग-मलाला' में इसी मलाला यूसुफजई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। मलाला ने पुरस्कार प्राप्त करने के बाद अपने संबोधन में कहा था, "मैं ज़िद की हद तक प्रतिबद्धता रखने वाली इनसान हूँ, जो चाहती है कि हर बच्चे को शिक्षा हासिल हो। मैं अपने पिता को धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मेरे 'पर' नहीं कतरे, और मुझे उड़ान भरने दी... मैं अपनी माँ का शुक्रिया अदा करती हूँ कि उन्होंने मुझे सब्र रखने और हमेशा सच बोलने की प्रेरणा और हिम्मत दी..."

एक ही मंच से एक साथ कैलाश सत्यार्थी एवं मलाला यूसुफजई को शांति का नोबेल पुरस्कार मिला था। उस अवसर पर नार्वे की नोबेल समिति के प्रमुख थोर्बाजोर्न जगलाद ने पुरस्कार प्रदान करने से पहले अपने संबोधन में कहा था, "सत्यार्थी और मलाला निश्चित तौर पर वही लोग हैं जिन्हें अल्फ्रेड नोबेल ने अपनी वसीयत में 'शांति का मसीहा' कहा था।" आगे उन्होंने कहा कि एक बुजुर्ग व्यक्ति और एक लड़की, एक भारतीय और दूसरी पाकिस्तानी, एक हिंदू और दूसरी मुसलिम दोनों उस गहरी एकजुटता के प्रतीक हैं, जिसकी दुनिया को जरूरत है।

उस समय सत्यार्थी की उम्र साठ साल की थी और मलाला की सत्रह साल की। दोनों को 11 लाख डॉलर की पुरस्कार राशि साझे में मिली थी।

यहाँ मैं चर्चा कर रहा हूँ मलाला की। 'टाइम पत्रिका' ने दुनिया के 16 प्रभावशाली टीन एजर्स की लिस्ट में मलाला को पहले नंबर पर रखा था। लड़कियों की पढ़ाई व उनके अधिकारों के लिए मलाला ने लंबी लड़ाई लड़ी। वह बचपन से महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित थीं, यद्यपि उनके दादू उन्हें गांधी जी की आत्मकथा पढ़ने से मना करते थे। उन्हें मलाला की पढ़ाई-लिखाई पर भी एतराज था। वे नहीं चाहते थे कि मलाला शिक्षा ग्रहण करे।

मलाला का जन्म पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वाह प्रांत के स्वात जिले में हुआ था। 2013 में वह भिंगोरा शहर में आठवीं कक्षा में पढ़ती थीं। आस-पास यह बात फैली तो उन्हें आतंकियों ने अपनी गोली का निशाना बनाया। 13 साल की उम्र में ही वे तहरीक-ए-तालिबान शासन के अत्याचारों के बारे में एक दूसरे नाम से बीबीसी के लिए ब्लॉगिंग द्वारा स्वात घाटी के लोगों को अवगत कराने लगी थीं। तालिबान के आतंकियों ने उन्हें हिट लिस्ट में ले लिया और अक्तूबर 2012 में उन पर हमला कर दिया। 11 साल की उम्र में वह तालिबान के फ़रमान की वजह से स्कूल नहीं जा पाईं। उन दिनों स्वात घाटी पर तालिबान के लोगों की हुकूमत चलती थी। वे नहीं चाहते थे कि मलाला जैसी लड़कियाँ पढ़ें व आगे चलकर जागरूक होकर मर्दों को गुलाम बनाएँ।

यह पुस्तक मलाला के संघर्ष एवं उपलब्धियों की गाथा है। मलाला ने जमीनी दायरों के बाहर अपनी पहचान बनाई। अपनी

ऊर्जा और सकारात्मकता से उन्होंने तालिबानियों को टक्कर दी। उग्र राष्ट्रवाद, जातीय द्वेष, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद विश्व शांति में बाधा हैं।

तालिबानियों ने उस वक्त उनके सिर गोली दागी थी जब वह पढ़कर थकी-माँदी स्कूल बस से घर लौट रही थीं। इतनी छोटी-सी उम्र में मलाला ने अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा से काफी चर्चा की, इस मुद्दे को लेकर वह इंग्लैंड की महारानी से मिलीं व संयुक्त राष्ट्र में भाषण दिया, जिसकी तारीफ पूरी दुनिया में एक स्वर से हुई थी।

उनके ऐसे साहस भरे कार्य से प्रसन्न होकर सरकार ने आठवीं कक्षा की इस छात्रा को परास्नातक की डिग्री प्रदान की।

छोटी-सी उम्र में मलाला ने दुनिया के सामने अपने को एक उद्धरण के रूप में पेश किया। परिस्थितियों से घबराने के बजाय अनेक तरह की परिस्थितियों का सामना किया। तालिबानियों को भी महसूस हुआ कि यह आम लड़की नहीं है। आज मलाला उस मुकाम पर पहुँच गई हैं जहाँ से उनकी हर बात को दुनिया के लोग सुनते हैं। मलाला विश्व में बेहद बहादुर लड़की का रोल मॉडल हैं। उन्होंने शिक्षा की ज्योति घर-घर में जलाने का संकल्प लिया है। हमें भी हर स्तर पर उनकी परोक्ष-अपरोक्ष रूप में सहायता करनी चाहिए। मानवाधिकार के लिए लड़ने वाला व्यक्ति किसी एक देश का नहीं होता। वह विश्व का होता है। हिंदू, मुसलिम, सिख, ईसाई—धर्म नहीं पंथ हैं। धर्म तो एक ही है जो सब पर लागू होता है और मलाला उसी धर्म की प्रतीक है।

सरल-सहज शब्दों में लिखी यह पुस्तक विश्व की सभी लड़कियों को शिक्षा देती है कि कैसे आतंकवादियों से निडर होकर समाज की सेवा की जा सकती है। अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए कैसे अधिकार प्राप्त करने की लड़ाई लड़नी चाहिए। छोटी उम्र में भी कैसे आततायियों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। मलाला जुल्म के खिलाफ संघर्ष का प्रतीक हैं।

ह्यूमनकाइंड

मानव-जाति का आशावादी इतिहास

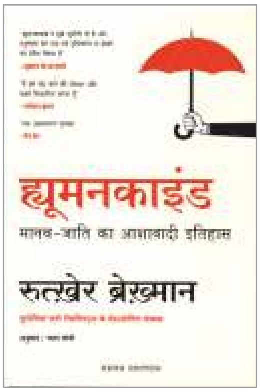

समीक्षक : **योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **रुत्खेर ब्रेख्मान**

अनुवादक : **मदन सोनी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 384

मूल्य : रु. 499/-

मानव-जाति का इतिहास अनेक दृष्टियों से अनेक नृतत्ववेत्ताओं द्वारा लिखा गया है, किंतु यह पुस्तक 'मानव-जाति' को बिलकुल अलग नजरिये से देखने का प्रयास है। प्रख्यात मानवशास्त्री फ्रांस डी वाल ने लिखा है—"'ह्यूमनकाइंड' इस प्रश्न पर गहराई में जाकर की गई समीक्षा है कि इस धारणा में क्या खोट है कि हम मनुष्य स्वभाव से ही बुरे हैं और भरोसे के काबिल नहीं हैं। अपने जीवंत विवरणों और किस्सों के साथ रुत्खेर ब्रेख्मान हमें उन संदेहास्पद प्रयोगों तक वापस ले जाते हैं, जिन्होंने इस धारणा को बढ़ावा दिया और हमारे समक्ष मानव-जाति को लेकर एक अधिक आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।"

इस पुस्तक के 'नई यथार्थपरकता' अनुच्छेद में लेखक रुत्खेर ब्रेख्मान ने 'मानव-जाति' के संदर्भ में एक बड़ा ही रोचक संवाद दिया है, जिसे जानना जरूरी है—

'एक बूढ़ा आदमी अपने पोते से कहता है : "मेरे भीतर एक लड़ाई जारी है। यह दो भेड़ियों के बीच की भयानक लड़ाई है। इनमें से एक बुरा भेड़िया है—गुस्सैल, लालची, ईर्ष्यालु, घमंडी और कायर और दूसरा अच्छा भेड़िया है—शांत, स्नेहिल, विनम्र, उदार, ईमानदार और भरोसेमंद। ये दो भेड़िये तुम्हारे अंदर भी लड़ रहे हैं और अन्य व्यक्ति के अंदर भी लड़ रहे हैं।"'

पल भर बाद लड़का पूछता है, "जीत किस भेड़िये की होगी?"

बूढ़ा मुस्कराता है।

"वह जिसे तुम भोजन देते हो।" (पृष्ठ-19)

निश्चय ही, लेखक रुत्खेर ब्रेख्मान ने उक्त जीवंत संवाद के माध्यम से 'मानव-जाति' के मूल स्वभाव को स्पष्ट कर दिया है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसमें लेखक रुत्खेर ब्रेख्मान अनेक बड़े चिंतकों को बार-बार अपने मंतव्यों को संपुष्ट करने के लिए उद्धृत करते हैं।

इस पुस्तक के अध्याय 'सत्ता किस तरह भ्रष्ट करती है' में लेखक रुत्खेर ब्रेख्मान ने अंत में जो निष्कर्ष दिया है, वह पूरे विश्व के सत्ताधीशों के संदर्भ में विचारणीय अवश्य बन गया है। रुत्खेर ब्रेख्मान लिखते हैं—"इस तरह की दुनिया में, वे नेता शिखर तक नहीं पहुँचते, जो सबसे ज्यादा स्नेहिल और सबसे ज्यादा हमदर्द होते हैं, बल्कि वे पहुँचते हैं, जो इनके विपरीत होते हैं। इस दुनिया का मंत्र है : जो बेशर्म होता है, वही जीवित बचा रहता है (सर्वाइवल ऑफ द शेमलैस)।" (पृष्ठ-211)

लेखक ने यद्यपि मूलतः यूरोपीय राष्ट्रों को केंद्र में रखकर ही यह पुस्तक लिखी है, लेकिन मानव-जाति के मूल चरित्र में कुछ विशेषताएँ तो सार्वदेशिक और सार्वभौम होती ही हैं, इसलिए यह पुस्तक सभी देशों के मानव-चरित्र की उन खूबियों और दुर्बलताओं पर प्रकाश डालती है, जो हमें वंशानुगत रूप में मिलती आई हैं।

इस पुस्तक के परिच्छेद 'एक नई यथार्थपरकता' के आरंभ में लेखक रुत्खेर ब्रेख्मान ने अपने चहेते लेखक विक्टर फ्रेंकल का कथन उद्धृत किया है—"एक तरह से हमें इसलिए आदर्शवादी बनना जरूरी है, क्योंकि तभी हम सच्चे, वास्तविक यथार्थवादी बन पाते हैं।"

इस पुस्तक के लेखक ने यह कथन सोद्देश्य यहाँ उद्धृत किया है क्योंकि लेखक हमें मानव-जाति के आशावादी दृष्टिकोण से परिचित कराना चाहता है। इसी संदर्भ में लेखक प्रसिद्ध साहित्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का भी एक कथन यहाँ पूरे विश्वास के साथ हमें देता है, जो लेखक की सोच को बल देने वाला है—"अगर आप किसी आदमी को उसके अपराध के लिए दंडित करने चाहते हैं, तो आपको उसे आघात पहुँचाना अनिवार्य है। अगर आप उसमें बदलाव लाना चाहते हैं, तो आपको उसमें सुधार लाना अनिवार्य है। और मनुष्य आघात पहुँचाए जाने से नहीं सुधरता।" (पृष्ठ-277)

यह पुस्तक हमें भारत के संदर्भ में गांधीवाद और साम्यवाद के द्वंद्वात्मक स्वरूप को समझने में भी बहुत मदद कर सकती है। लेखक ने पुस्तक के अंत में अपना जो निष्कर्ष दिया है, वह हमें जहाँ मानव के मन और उसके व्यवहार को जानने की कुंजी दे देता है, वहीं पूरी मानव-जाति के आशावादी इतिहास की सुखद-सी तस्वीर भी हमारे सामने रखता है। लेखक कहता है—"अगर हम मनोविज्ञान और जीवविज्ञान, पुरातत्व और मानवविज्ञान, समाजविज्ञान और इतिहास के एकदम ताजा साक्ष्यों पर ध्यान दें, तो हम केवल एक ही नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि मनुष्य हजारों साल से एक खोटी आत्म-छवि से परिचालित होता आया है। युगों से, हम यह मान कर चलते आए हैं कि लोग स्वार्थी होते हैं, हम पशु हैं, या उससे भी गए-गुजरे हैं। युगों से, हम विश्वास करते आए हैं कि सभ्यता एक झीना-सा मुलम्मा है, जो मामूली-सी ठोकर लगने पर चटक जाएगा। आज हम जानते हैं कि मानव-जाति के प्रति यह दृष्टि, और इतिहास के प्रति यह दृष्टिकोण पूरी तरह अवास्तविक है।" (पृष्ठ-329)

वास्तव में यह पुस्तक वैश्विक दृष्टि से संपूर्ण मानव-जाति के उस चरित्र पर बहुत गहराई से संवाद करती है, जो आशावादी संसार की ओर हमें बढ़ाने के लिए बहुत आवश्यक है। श्री मदन सोनी द्वारा किया गया अनुवाद सुंदर और बोधगम्य होने के कारण पाठकों तक इस मूल्यवान ग्रंथ को पहुँचाने में सहायक बना है।

सफरनामा

पीलीभीत टाइगर रिजर्व

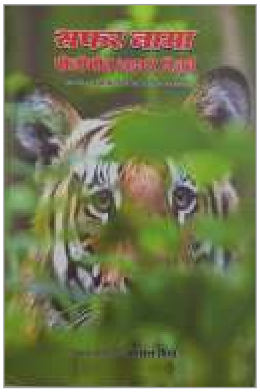

समीक्षक : **मोहन शर्मा**
लेखक व प्रकाशक : बिलाल मियाँ, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश।
पृष्ठ : 66
मूल्य : रु. 599/-

भारत के 51 बाघ संरक्षण क्षेत्रों में से एक है—पीलीभीत टाइगर रिजर्व। उत्तर प्रदेश के पीलीभीत और शाहजहाँपुर जिले में फैले इस अभयारण्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सन् 1852 के अंत से लेकर वर्तमान तक पीलीभीत के जंगलों में वन्यजीवों के संघर्ष, वहाँ के विकास कार्यक्रमों, इस वन्य-क्षेत्र में समय-समय पर हुई घटनाओं आदि की विस्तृत जानकारी पुस्तक में दी गई है।

डॉक्यूमेंट्री सह चित्र-पुस्तक के लेखक व संकलनकर्ता बिलाल मियाँ पेशे से वाइल्फलाइफ फोटोग्राफर हैं। पुस्तक में इन्होंने पीलीभीत वन्य क्षेत्र में अंग्रेजी शासन से लेकर अब तक की घटनाओं को तस्वीर समेत उपलब्ध कराने का सराहनीय कार्य किया है। लेखक ने इसमें पीलीभीत बाघ संरक्षण क्षेत्र (पीटीआर) के वन्य-जीवन, मानव और जीव-जंतुओं के समक्ष आने वाली चुनौतियों, विगत एक सदी में इन घने जंगलों में घटित घटनाओं और पर्यटकों के रोमांच के लिए सभी सुख-सुविधाओं से अवगत कराने का प्रयास किया है। हिमालय की तलहटी में बसे पीलीभीत से होकर कई नदियाँ उतरती हैं, जिसके कारण यह वन्य-क्षेत्र बड़े पैमाने पर फल-फूल रहा है। पीलीभीत बाघ संरक्षण क्षेत्र को एक नजर में जानने, वहाँ की रेंजों का विवरण, यूरोप से इस वन्य-क्षेत्र का संबंध, चूका नदी और सप्तसरोवर, लग्गा-भग्गा की कहानी, एशिया के सबसे बड़े कच्चे बाँध शारदा सागर बाँध, वाइल्डलाइफ ट्रस्ट ऑफ इंडिया (डब्ल्यू.टी.आई.) सहित अन्य प्रकृति प्रेमी संस्थाओं के सहयोग, विश्वस्तरीय सुविधाओं से संपन्न होटल और रिसॉर्ट, मानव व वन्यजीवों के बीच संघर्ष, एक सैलानी की नजरों में पीलीभीत टाइगर रिजर्व, वहाँ के टूरिस्ट गाइड, जिलाधिकारी की कार्यशैली का परिचय, वन्य-क्षेत्रों में प्रमुख घटनाओं, वृक्षारोपण प्रभाग के साथ-साथ बंगाल टाइगर, भारतीय तेंदुए, पीलीभीत में पाए जाने वाले विभिन्न प्रजातिओं के कछुओं, साँप, तितलियों, पक्षियों, नीलगाय, चिंकारा, साँभर आदि हिरनों, जंगल से पकड़े गए शिकारी अर्थात पोचर, वन्य-क्षेत्रों से भटककर रिहायशी इलाकों में आए जंगली जानवरों को पकड़कर उनके आवासीय क्षेत्र में छोड़ने के किस्सों के साथ-साथ पीटीआर के अधिकारियों और कर्मचारियों का संक्षिप्त विवरण भी इस पुस्तक में दिया गया है। लेखक ने छात्रों, शोधकर्ताओं और पर्यटकों के लिए कुछ प्रमुख तालिकाएँ और सूचियाँ भी सरल और स्पष्ट रूप में सुलभ कराई हैं, जिनमें पीलीभीत बाघ संरक्षण क्षेत्र में अग्रणी संघर्षों में मानव और बाघों की मृत्यु, वर्ष 2020 तक अभयारण्य में मौजूद वन्यजीवों की संख्या और पर्यावरण संबंधी महत्वपूर्ण दिवस, भारतवर्ष के अन्य बाघ संरक्षण क्षेत्रों की सूची उनके क्षेत्रफल सहित और एक नजर में पीलीभीत जनपद की भौगोलिक, लिंगानुपात, साक्षरता, धर्म, जनसंख्या समेत वहाँ के मुख्य पर्यटन स्थलों का विवरण भी है।

लेखक ने एक स्थान पर बाघों को सफलतापूर्वक रेस्क्यू करने वाले विशेष रक्षकों की उपलब्धियों के बारे में भी बताया है। पुस्तक की सबसे खास बात है कि फोटोग्राफर के रूप में लेखक ने इसमें तस्वीरों का उपयोग कर वन्य-जीवन को पुस्तक में ही सजीव-सा बना दिया है। प्रकाशित पुस्तक से पूर्व पीलीभीत टाइगर रिजर्व की जो महत्वपूर्ण जानकारियाँ और घटनाएँ इधर-उधर बिखरी हुई थीं या

उनके बारे में केवल वन्य-क्षेत्र के कर्मचारी या आस-पास के लोग जानते थे, उन्हें आम पाठकों के समक्ष एक मंच पर सचित्र प्रस्तुत करने का उत्कृष्ट कार्य लेखक द्वारा किया गया है। इसे प्रकृति-प्रेमियों के लिए अनुपम भेंट कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस संकलित पुस्तक को लेखक ने अपने यात्रा-वृत्तांत से मिले अनुभव, पीलीभीत बाघ संरक्षण क्षेत्र के अधिकारियों व अन्य कर्मचारियों के सहयोग से प्रकाशित किया है।

पुस्तक के प्रशस्ति-पत्र में माननीय जिलाधिकारी श्री पुलकित खरे और वन विभाग के माननीय उच्चाधिकारियों के हर्ष संदेश भी प्रकाशित हैं। इसमें एशिया के सबसे बड़े एवं कच्चे बाँध की संपूर्ण जानकारी व उपयोगिता के बारे में विस्तृत वर्णन है, साथ ही आदमखोर बाघों और लोगों के बीच हुए संघर्ष की कहानी का भी चित्रण इसमें बखूबी किया गया है। एक लेख प्रतिवर्ष 11 सितंबर को मनाए जाने वाले वनकर्मी शहीद दिवस पर भी है, जिसमें वनकर्मियों की बहादुरी के किस्सों से रू-ब-रू कराया गया है।

यह सफरनामा पीलीभीत के वन्य-जीवन, प्राकृतिक सौंदर्य और पर्यटन पर आधारित है, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत के 46वें बाघ संरक्षण क्षेत्र से पाठकों को परिचित कराना है।

साझेदारी के पक्ष में

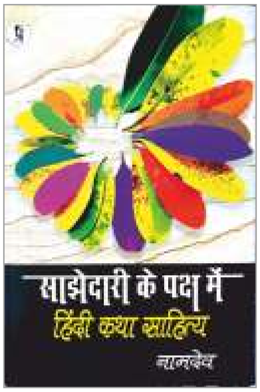

समीक्षक : **डॉ. रेणु व्यास**

लेखक : **नामदेव**

प्रकाशक : प्रभाकर प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 80

मूल्य : रु. 225/-

"...कह रहे हैं 'पार्टीशन' हुआ था। हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है।" स्वयं प्रकाश की कहानी 'पार्टीशन' के कुर्बान भाई कहते हैं, और सच कहते हैं। 14-15 अगस्त, 1947 के बाद भी दिलों का विभाजन जारी है। वर्ष 1992 और 2002, इस नफरत के दो दौर हैं जो सांप्रदायिक दंगों के रूप में प्रकट हुए, पर इनके पीछे भी दिलों में निरंतर सुलगती हुई नफरत थी। नाजीवाद से प्रभावित देशों ने मनुष्य की मनुष्य के प्रति नफरत के स्मारकों को सहेज कर रखा है ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उससे सबक ले सकें। भारत में ऐसे कोई स्मारक नहीं हैं। हमारे साहित्य के अवचेतन में ये भयंकर स्मृतियाँ लगातार गूँजती रही हैं। साथ ही इस नफरत के पार जाने की आकांक्षा भी। जिस तरह दिलों का विभाजन जारी है, उसी तरह इस विभाजन के विरुद्ध संघर्ष भी जारी है। कुर्बान भाई के शब्दों में ही कहें तो 'आप क्या ख़ाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं? अगर आपने साझेदारी के पक्ष में इस संघर्ष-गाथा को नहीं पढ़ा-पढ़ाया।' कथा साहित्य की ऐसी ही कृतियों पर आधारित है—डॉ. नामदेव की पुस्तक 'साझेदारी के पक्ष में हिंदी कथा साहित्य'। पुस्तक दो खंडों में बँटी है।

पहले खंड में भारत-विभाजन के समय और उसके बाद के दौर की सांप्रदायिकता को केंद्र में रखने वाले 20 उपन्यासों पर आलेख हैं। दूसरे खंड में मुख्यतः इस विषय पर आधारित कहानियों को विवेचन का विषय बनाया गया है। पुस्तक में एक लंबी भूमिका भी है जिसमें सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को भारतीयता को चोट पहुँचाने वाली अन्य विभाजनकारी प्रवृत्तियों के साथ देखने की कोशिश की गई है। हालाँकि भूमिका में कुछ सरलीकृत निष्कर्ष भी हैं, किंतु मोटे तौर पर यह मनुष्यता के पक्ष में एक जिरह है। भारत के संदर्भ में जब भी कोई रचना सांप्रदायिकता पर केंद्रित होती है तो उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भारत-विभाजन की गूँज सुनाई दे ही जाती है, चाहे वह किसी भी दौर की सांप्रदायिकता को अपना विषय बनाए।

पहले खंड में सांप्रदायिकता-विरोधी उपन्यासों में 'झूठा सच', 'तमस', 'कितने पाकिस्तान' जैसे चर्चित उपन्यासों के अतिरिक्त कई अल्प-चर्चित उपन्यास भी हैं। साहित्यिक महत्व की दृष्टि से गौण मानी गई कृतियों में भी जीवन के कुछ ऐसे चित्र हो सकते हैं जो सांप्रदायिक दंगों से झुलसी मनुष्यता का प्रामाणिक अंकन प्रस्तुत करते हैं। तसलीमा नसरीन का 'लज्जा' ऐसी ही कृति है। खुशवंत सिंह के उपन्यास 'पाकिस्तान मेल' को भी इसमें शामिल किया गया है, किंतु मोटे तौर पर हिंदी-उर्दू की रचनाएँ पुस्तक में शामिल हैं। विवेचित पुस्तक में जहाँ एक ओर इसमें 'झूठा सच' जैसा विराट फलक का उपन्यास शामिल है तो वहीं दूसरी ओर 'काला पहाड़' जैसा 'मेवात' पर आधारित स्थानीय रंगत की रचना पर आलेख भी है। दूसरे खंड में कुछ आलेख कई विधाओं को अपने में शामिल कर सांप्रदायिकता के प्रश्न पर विचार करने वाले हैं, परंतु इसमें कहानी विधा की रचनाएँ केंद्र में हैं जिनमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, मंटो की कहानियों और स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन' पर स्वतंत्र आलेख हैं।

इन सभी आलेखों में सांप्रदायिकता की समस्या को ही केंद्र में रखा गया है, किंतु दलित, स्त्री जैसे अन्य वंचित वर्गों के प्रश्न को भी शामिल करने की दृष्टि लेखक की है। पुस्तक में अधिकांश आलेख विवरणात्मक हैं। एक प्रवृत्ति के रूप में सांप्रदायिकता की पड़ताल करते लेखक ने लंबी भूमिका में इस अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है। भूमिका में कुछ सतही टिप्पणियाँ भी हैं।

सांप्रदायिकता भारतीयता के सम्मुख बड़ा खतरा है। यह कई नए रूपों में सामने आ रही है और भारतीय राष्ट्र को कमजोर कर रही है। इसके विरुद्ध संघर्ष करने वाला हर प्रयास महत्वपूर्ण है। 'साझेदारी के पक्ष में' पुस्तक ऐसा ही एक प्रयास है। साहित्य के मोर्चे पर सांप्रदायिकता की इस मनुष्यता-विरोधी प्रवृत्ति से लड़ाई निरंतर आवश्यक है, ताकि लगातार मोंथरी की जाती मानवीय संवेदना को झकझोरा जा सके।

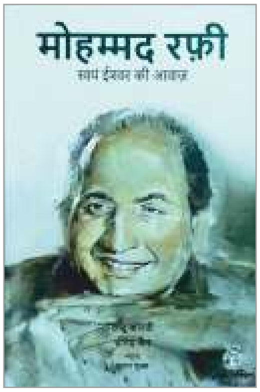

समीक्षक : **रोहित कौशिक**

लेखक : **राजू कोरती, धीरेंद्र जैन**

अनुवाद : **प्रयाग शुक्ल**

प्रकाशक : नियोगी बुक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 292

मूल्य : रु. 595/-

मोहम्मद रफी

स्वयं ईश्वर की आवाज

संगीत की दुनिया में मोहम्मद रफी ने जो मुकाम हासिल किया, वह बहुत कम लोगों को नसीब होता है। यह मुकाम उन्हें विरासत में हासिल नहीं हुआ, बल्कि इसे पाने के लिए उन्होंने अनवरत संघर्ष किया। राजू कोरती और धीरेंद्र जैन ने मोहम्मद रफी की गौरवमयी संगीत यात्रा को बहुत ही खूबसूरती से अपने शब्दों में पिरोया है। यह पुस्तक मूल रूप से अंग्रेजी में लिखी गई थी। अनुवादक प्रयाग शुक्ल के अनुवाद का ही कमाल है कि इसे पढ़ते हुए यह महसूस नहीं होता है कि हम कोई अनूदित पुस्तक पढ़ रहे हैं। प्रयाग शुक्ल का अनुवाद सहज और सरल तो होता ही है, उनके अनुवाद में एक अलग ही लय दिखाई देती है। इसीलिए पाठक इस पुस्तक से एक आत्मीय संवाद स्थापित कर लेता है।

रफी इतने सहज-सरल और उदार थे कि फिल्म उद्योग में स्थापित होने के लिए संघर्ष कर रहे विभिन्न लोगों और छोटे संगीत-निर्देशकों की मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। वे फीस की चिंता नहीं करते थे और अगर उन्हें कोई गीत अच्छा लगता था तो उसे जरूर गाते थे। एक रुपये की प्रतीक राशि में उन्होंने निसार बज्मी के लिए 'चंदा का दिल टूट गया है रोने लगे हैं सितारे' गीत गाया था। जब 'चंगेज खान' (1957) में प्रेमनाथ पर फिल्माया जाने वाला गीत 'मुहब्बत जिंदा रहती है, मुहब्बत मर नहीं सकती' उन्होंने गाया और संगीत-निर्देशक हंसराज बहल ने उनसे पूछा कि इसके लिए आप क्या फीस लेंगे? तो रफी ने उनसे कहा—"छोड़िए भी, इस गीत की धुन सोने में तुलने लायक है। यह गीत गाना ही मेरी सबसे बड़ी रकम है।" रफी का यह विश्वास था कि हर संगीतकार उनका गुरु था। शब्दों पर पूर्ण अधिकार होने के बावजूद वह अपने को संगीतकार से ऊपर कभी नहीं रखते थे। संगीतकार का कहा हुआ, उनके लिए सब-कुछ होता था और वह उसी तरह गाते थे जैसा कि गीतकार चाहता था।

लेखकद्वय ने विभिन्न अध्यायों के माध्यम से विस्तृत फलक पर मोहम्मद रफी की जीवन-यात्रा को प्रस्तुत किया है। दरअसल जीवन लाल मट्टू के अलावा मास्टर इनायत हुसैन ने भी रफी को लोक गायन की बारीकियाँ सिखाईं। लाहौर में रफी ने कई अन्य कलाकारों और उस्तादों से भी काफी कुछ सीखा। जब रफी लाहौर में थे, तब वहाँ कई पंजाबी और हिंदी फिल्में बन रही थीं, लेकिन तब श्याम सुंदर के अलावा किसी संगीत-निर्देशक को यह नहीं सूझा कि वह उनकी रेशमी आवाज का इस्तेमाल करे।

लाहौर में मास्टर गुलाम हैदर, रफी को बहुत पसंद करते थे। 1943 के अंत में गुलाम हैदर बंबई चले गए। मास्टर गुलाम हैदर के बहुत बार बुलाने के बाद रफी भी बंबई चले गए। बंबई में 1945 में रफी ने फिल्मों के लिए कुछ गीत गाए, लेकिन उनका ज्यादा असर नहीं हुआ। हाँ, मिलने वाला मेहनताना जरूर अच्छा था। लाहौर में एक गीत गाने के लिए उन्हें 25 रुपये मिलते थे, लेकिन बंबई में एक गीत गाने के लिए 300 रुपये मिलते थे। गुजर-बसर के लिए वे निजी महफिलों में भी गाया करते थे। उन्हें 1946 में बड़ा ब्रेक मिला। उन्होंने 'जुगनू' फिल्म में 'यहाँ बदला वफा का बेवफाई के सिवा क्या है' डुएट गीत की रिकॉर्डिंग की। 1947 में जब फिल्म रिलीज हुई तो इस डुएट ने धूम मचा दी। इसके बाद रफी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। जब रफी ने 'शहीद' फिल्म के लिए एक गीत 'वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो' गाया तो यह लोगों को इतना पसंद आया कि घर-घर में रफी की चर्चा होने लगी। उस समय के ज्यादातर संगीत-निर्देशक, जिनमें अगुआ तो पंडित हुस्नलाल-भगतराम ही थे, रफी की प्रतिभा को धार देने में बेहद दिलचस्पी लेने लगे।

पंडित हुस्नलाल-भगतराम के अंतर्गत रफी का स्वर खूब मँजता चला गया और लता मंगेशकर के साथ वे भारत के अग्रणी कलाकार बन गए। 1950 के बाद ज्यादातर संगीत-निर्देशक यह मानने लगे थे कि फिल्म संगीत में रफी की दौड़ लंबी होने वाली है। जब नौशाद ने 'दुलारी' (1949) और 'दीदार' (1951) जैसी फिल्मों ने लिए बेहतरीन धुनें बनाईं, तो रफी छा गए। 1952 में रफी ने अपनी आवाज और अंदाज में अचानक बदलाव किया और धीमे स्वरों को ऊँचे पायदान पर ले गए।

फिल्म संगीत पर लिखने वाले कई लेखकों और फिल्मों के इतिहास पर नजर डालने वालों ने 1952-53 के बाद रफी की उपलब्धियों को दर्ज किया है। लेकिन उनमें से ज्यादातर ने रफी के शुरुआती दिनों के संघर्ष और सफलता पर पैनी नजर नहीं डाली है।

इस पुस्तक में केवल मोहम्मद रफी की जीवनी भर समाहित नहीं है, बल्कि यह फिल्मी जगत और संगीत की दुनिया के विभिन्न किरदारों के व्यक्तित्व को भी हमारे सामने रखती है। एक तरह से यह फिल्मी जगत के विभिन्न कालखंडों का ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।

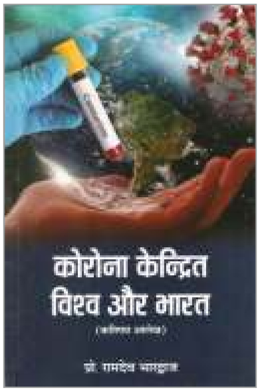

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **प्रो. रामदेव भारद्वाज**

प्रकाशक : इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 280

मूल्य : रु. 350/-

कोरोना केंद्रित विश्व और भारत

21वीं सदी के तीसरे दशक के आरंभ से ही यह दुनिया जिस वैश्विक महामारी से बुरी तरह ग्रस्त है, उसे हम लोग 'कोरोना' के नाम से जानते हैं। भारत में गत वर्ष इसके लक्षण मिले और वर्तमान में पूरी दुनिया इस बीमारी की दूसरी लहर से बहुत बुरी तरह त्रस्त है। पिछले वर्ष जब महामारी आई तो स्थितियाँ इतनी बुरी और बेकाबू नहीं थीं, जितनी इस वर्ष रहीं। हालाँकि हमारे देश की बौद्धिक प्रतिभाओं ने इस महामारी के खतरे का सहज अनुमान इसके आरंभ में ही लगा लिया था। इसी अनुमान के परिणामस्वरूप इस महामारी से निबटने के लिए सरकारों ने अपनी समझ के अनुसार देशव्यापी लॉकडाउन लगाकर इस बीमारी को फैलने से रोकने में काफी हद तक सफलता पाई, किंतु यह भी सच है कि इस दौरान देशवासियों को अनेक अप्रत्याशित कठिनाइयों से भी गुजरने पर मजबूर होना पड़ा। अधिसंख्य लोगों को इस स्थिति में रोजी-रोटी के संकट से भी दो-चार होना पड़ा। जब दुनिया भर के देश इस संकट से जूझ रहे थे, उसी समय देश के बौद्धिकों ने इस महामारी से जुड़ी जानकारी को जुटाकर पाठकों को शिक्षित और सावधान करने के लिए अनेक शोध आलेखों को लिखकर सबको जागरूक करने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया। ऐसे ही अनेक प्रयासों में एक प्रमुख प्रयास की परिणति यह पुस्तक है। इस पुस्तक का नाम है—कोरोना केंद्रित विश्व और भारत। इस पुस्तक के लेखक हैं प्रो. रामदेव भारद्वाज।

इस पुस्तक के अंतर्गत कोरोना वायरस की उत्पत्ति, स्वरूप और प्रभाव, कोरोना संकट से उत्पन्न राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय समस्याएँ, नई-नई अवधारणाएँ व कूटनीतिक समीकरण, मनोवैज्ञानिक तनाव एवं दबाव की राजनीति आदि बिंदुओं का लेखक द्वारा विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इस पुस्तक के अंतर्गत कुल 20 आलेखों को संकलित किया गया है। हालाँकि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद एक सुखद आश्चर्य यह होता है कि लेखक तो अध्यापन जगत का जाना-पहचाना नाम है और चिकित्सा जगत अथवा औषधीय ज्ञान के मामलों का विशेषज्ञ नहीं है। किंतु जितनी बारीकी और व्यवस्थित विवेचना इस पुस्तक के आलेखों में हम देखते हैं, वह एक पाठक की हैसियत से हमें बहुत गहरे प्रभावित करता है।

अब तक की प्राप्त जानकारी के अनुसार, यह एक तथ्य है कि कोविड-19 की शुरुआत दुनिया में सबसे पहले चीन के वुहान नगर से हुई। हालाँकि चीन ने बड़ी तेजी से इस महामारी पर नियंत्रण कर लिया, जबकि दुनिया के लगभग अधिकांश देश इस महामारी से अब तक जूझ रहे हैं और सर्वाधिक प्रभावित देशों में भारत भी एक है। विद्वानों का एक धड़ा यह भी मानता है कि इस महामारी को दुनिया में चीन द्वारा ही फैलाने की कोशिश की गई है। हालाँकि इस बारे में कुछ शुरुआती शोध पत्रों का हवाला दिया गया है, किंतु अभी इस बारे में कोई स्पष्ट निर्णय देना बहुत मुश्किल और जल्दबाजी भरा कहा जा सकता है।

पुस्तक के आरंभिक आलेख में ही 'कोरोना महामारी और विश्व' शीर्षक से लेखक ने इस महामारी की पृष्ठभूमि और विकास को पाठकों के सामने रख दिया है। इसके अंतर्गत कोरोना का आशय, लक्षण, संक्रमण के तरीके, आकार और स्वरूप, इसके तीन स्ट्रेन (तब तक तीन स्ट्रेन की ही दुनिया को जानकारी हो पाई थी।), इसकी उत्पत्ति और मनुष्यों में संक्रमण की यात्रा, इससे बचाव के उपाय एवं वैक्सीन आदि संबंधी विस्तृत जानकारी लेखक ने देने का सफल प्रयास किया है।

कोरोना वायरस की एक विचित्र खासियत उसका जल्दी-जल्दी रूप बदलना है। इस कारण से उसका इलाज ढूँढ़ने में मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। पूरी दुनिया इसके इलाज के संबंध में जाँच और परीक्षण कर रही है, किंतु अब तक इसकी कोई औषधि निर्मित नहीं हो सकी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की निगरानी में दुनिया के कुछ देशों ने इस महामारी से बचाव के लिए वैक्सीन बनाने में सफलता हासिल की है। ऐसे देशों में भारतवर्ष का भी नाम प्रमुखता से लिया जाता है। यह हमारे देश के लिए एक संतोष का विषय है, किंतु जब तक इस महामारी का इलाज नहीं ढूँढ़ा जाता है, मानव मात्र पर प्राणों का यह संकट बना रहेगा।

लेखक ने बहुत कम समय में इस वैश्विक महामारी के संबंध में विस्तार से जानकारी जुटाकर एक प्रवाह के साथ पाठकों के समक्ष रखते हुए उनका ज्ञानवर्धन कर सजग करने की कोशिश की है। ऐसी पुस्तकों की निर्मिति बिना व्यापक परिश्रम, ज्ञान और समझ के संभव नहीं होती। यह पुस्तक मानव जाति को वर्तमान समय की सर्वाधिक खतरनाक महामारी की जानकारी मात्र उपलब्ध नहीं कराती, बल्कि उससे बचने और सावधान रहने के उपाय भी सुझाती है।

यह पुस्तक निश्चित रूप से पाठकों को कोरोना महामारी संबंधी कई महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने में सफल होगी।

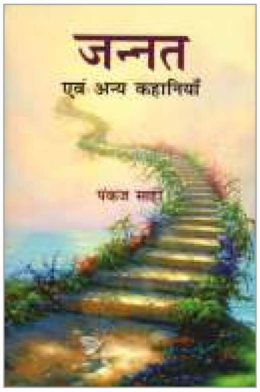

समीक्षक : **डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल**

लेखक : **पंकज साहा**

प्रकाशक : आनन्द प्रकाशन, कोलकाता।

पृष्ठ : 104

मूल्य : रु. 250/-

जन्नत एवं अन्य कहानियाँ

आलोच्य कहानी संग्रह 'जन्नत एवं अन्य कहानियाँ' में 16 कहानियाँ संकलित हैं, जिनमें समकालीन समाज की झलक मिलती है। लेखक बड़ी चतुराई से ऐसे पात्रों एवं घटनाओं का चयन करता है, जो उसके अनुभव संसार का प्रामाणिक हिस्सा जान पड़ते हैं। कोई भी कहानी तब तक प्रभावशील नहीं होती, जब तक उसका कथानक अपनी प्रासंगिकता का आभास न दे। पंकज साहा ज्वलंत प्रश्नों को कहानी के माध्यम से इस तन्मयता से कहते हैं कि पाठक को वह कहानी और उसके पात्र आस-पास के जीव ही लगते हैं और यही गुण इन कहानियों को विशिष्टता प्रदान करता है।

आर्थिक विपन्नता और बेरोजगारी आज की एक बड़ी समस्या है। 'ड्यूटी पर मौत' कहानी का मोहनलाल ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था। जब उसे नियमित नौकरी का अवसर मिला तो वह गया नहीं। बाद में वह अपने ही दोस्त के कॉलेज में चपरासी लग गया। वैसे रुतबा उसका बड़े बाबू से कम न था। वह संस्था का सारा काम बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से करता। उसका एक बेटा था। उसके लिए उसने सरकारी नौकरी के लिए बड़ी कोशिश की, परंतु एक लाख की रिश्वत देने की उसकी हैसियत नहीं थी। बेटियाँ भी थीं। वह कॉलेज के काम से रेल द्वारा पटना गया हुआ था। सोचता रहा कि कैसे अपने बेटे को नौकरी दिलवाए। बहुत से विचार कौंधते रहे। एक विचार की आहट से ही वह चहक उठा। किसी ने बताया था कि यदि कोई कर्मचारी ऑन ड्यूटी स्वर्ग सिधार जाए तो सरकार उसे अनुकंपा नियुक्ति वर्ग में नौकरी दे देती है। अब तक उसके दोस्त का कॉलेज सरकार ने अधिग्रहीत कर लिया था। सोचते-सोचते वह रेलगाड़ी की अपनी सीट से उठा और खिड़की के हैंडल को पकड़कर खड़ा हो गया। रेलगाड़ी अपनी तूफानी गति से दौड़ रही थी। उसे नहीं पता कब उसका हाथ छूट गया और वह नीचे जा गिरा। अनुकंपा वर्ग के अंतर्गत बेटे को नौकरी मिल गई। मार्मिक कहानी, जो बेरोजगारी की विभीषिका को निर्ममता से उद्घाटित करती है। संग्रह की शीर्ष कहानी 'जन्नत' एक व्यापक परिदृश्य को लेकर चलती है। जीनत, शबाना, मौलवी साहिब, सुभाष कुमार, रफीक आदि पात्रों के माध्यम से हिंदू-मुसलिम फसादों, तनावों पर आदर्शवाद का मुलम्मा चढ़ाते हुए उसका एहसास करवाने का प्रयत्न करती हैं। कसाई मोहल्ले से सुभाष कुमार को बुर्का पहनकर निकलना पड़ता है। प्रेम, अर्थ, जातिवाद आदि के कारण टूटते विवाह पर सशक्त व्यंग्य। रफीक अपनी विवाहिता को छोड़ दुबई में किसी धनवान व्यक्ति का घर जमाई बन जाता है। सुभाष कुमार आई.ए.एस. के प्रशिक्षण के लिए चला जाता है और शबाना को इंतजार करने की बात कहता है। सुभाष जिससे पहले प्रेम करता था, वह किसी अमीरजादे के साथ शादी रचा लेती है। संबंधों के दुराव-छिपाव की ऐसी कहानी जो पात्रों के प्रति सहानुभूति पैदा करती है। 'मोहनलाल प्रभृति' अलग आस्वाद की कहानी है। किसी नेता के मरने पर जब सरकारी छुट्टी होती है दो या तीन दिन की तो नौकरीपेशा से जुड़े लोग प्रसन्न होते हैं। मोहनलाल सरकारी नौकर का प्रतीक है। 'आजादी' कहानी महानगरों के विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के उच्छृंखल चरित्र की झलक प्रस्तुत करती है। सिगरेट, शराब, गाँजा आदि नशे करने को छात्र व्याकुल दिखाई देते हैं, लड़के भी और लड़कियाँ भी। 'होली' कहानी बदलते परिवेश की कहानी है। शहर से गाँव आया एक व्यक्ति यह देखकर हैरान है कि होली अब वैसा उत्सव नहीं रहा जैसा 20 साल पहले था। सब मिल-जुलकर होली मनाते थे। अब युवा लोग होली का अर्थ नशा करने को मानने लगे हैं। अपनी-अपनी टोलियाँ, अपना-अपना रंग। 'सुबह का भूला' में धनी बाप की बिटिया रेखा और सामान्य परिवार के व्यक्ति प्रो. विकास के व्यवहारगत टकराव की यथार्थवादी कथा है। रेखा विवाह के बाद भी अपने धनी माँ-बाप के साथ ही रहना पसंद करती है। उनकी पुत्री ऋचा भी अपने दोस्तों के साथ पार्टियों में व्यस्त रहती है। और जैसा हम आज-कल समाज में देखते हैं, ऋचा के दोस्त नशे में धुत होकर उससे दुराचार करते हैं और ऋचा की मृत्यु हो जाती है। अब रेखा की आँखें खुलती हैं और वह अपने पति प्रो. विकास के साथ उसके छोटे से घर में चली जाती है। कहानी दर्दनाक है। रेखा के चरित्र से घटनाओं की परिणति का पूर्वाभास हो जाता है पाठक को। फरीद चा, दुर्गा, व्यवस्था आदि कहानियाँ भी अपनी विषयवस्तु एवं प्रस्तुति के कारण सार्थक बन पड़ी हैं।

पंकज साहा अपने कथानकों के संयोजन में दक्ष हैं और छोटी-से-छोटी बात को भी इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उसमें डूबता-उतराता रहता है। आम आदमी के दुख-दर्द की कहानियाँ, आस-पास की कहानियाँ या पाठक की अपनी ही कहानियाँ। कहीं-कहीं संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। भाषा-शैली आकर्षक है। पंकज साहा के संवाद चटपटे और व्यंग्यपरक हैं, क्रूर भी।

जन्नत और अन्य कहानियाँ समकालीन परिवेश से परिचित करवाने वाला एक रोचक पठनीय संग्रह है।

सिगरेट

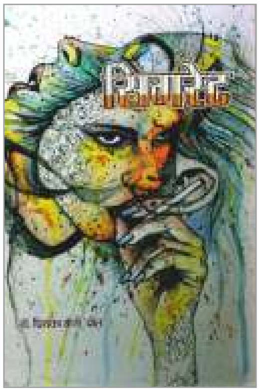

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **डॉ. प्रियंका सोनी 'प्रीत'**

प्रकाशक : साहित्य कलश पब्लिकेशन, पटियाला।

पृष्ठ : 96

मूल्य : रु. 250/-

काव्य-संग्रह 'सिगरेट' में छंदमुक्त कविताओं को बड़ी संजीदगी से संकलित किया गया है। हालाँकि 'सिगरेट' को पाठकों की टेबल तक लाना और सहेजकर रखवाना बड़े ही दुस्साहस का कारनामा है, लेकिन कवि/लेखक के लिए जैसे कुछ भी असंभव नहीं। सिगरेट खरीदना, धूम्रपान करना खतरे से खाली नहीं, मगर इस काव्य-संग्रह की 'सिगरेट' की बात ही अनूठी है।

डॉ. प्रियंका सोनी 'प्रीत' ने अपने इस काव्य-संग्रह में जिंदगी के विभिन्न प्रसंगों को भिन्न-भिन्न रंगों से सराबोर किया है। इसमें दुख-सुख, संयोग-वियोग और धूप-छाँव आदि को हालात की नाजुक और कंटीली काव्य-लहरियों के जरिए खूबसूरत अंदाज में प्रस्तुत किया गया है।

'पर्वत की ओर' कविता समर्पण का एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करती है, जिससे एक अवयव का अस्तित्व बिगड़ता है तो दूसरे का बनता भी है—

पर्वत की ओर से
गिरने वाला झरना
अपना अस्तित्व
अपना तन-मन
सब कुछ, हाँ सब कुछ
समर्पित कर देता है
नदियों को
और नदियाँ
समर्पित करतीं सागर को।

एक विरह से व्याकुल प्रेयसी के अंतर्मन की पीड़ा 'अवशेष' नामक कविता में घोलते हुए प्रस्तुतीकरण कितना मार्मिक बन गया है, इसका उदाहरण प्रस्तुत है—

कैसे बिसराऊँ मैं वो बचपन
प्रेम का दिल में बसा आशियाना
अब तो बस यादें हैं शेष
लम्हों में बहती जिंदगी
बन गई अवशेष।

कड़वी-मीठी यादों को जिंदगी के बेसाख्ता पा जाने वाले अनुभवों की कसौटी पर कविता 'शुक्रिया दोस्त' बड़ी गहराई से कसती नजर आती है—

तुझसे मिलकर...
कौन अपना-बेगाना-पराया
ये सब समझ आया
शुक्रिया दोस्त
तूने दोस्ताना निभाया।

दिद्दा

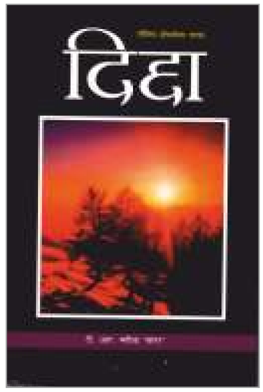

समीक्षक : **सुधांशु गुप्ता**

लेखक : **टी. आर. मगोत्रा 'सागर'**

प्रकाशक : मगोत्रा प्रकाशन, अप्पर ठट्ठर, जम्मू।

पृष्ठ : 82

मूल्य : रु. 500/-

संयोग से टी.आर. मगोत्र 'सागर' द्वारा लिखित मौलिक-ऐतिहासिक नाटक दिद्दा पढ़ने का अवसर मिला। कश्मीर की दिद्दा रानी एक ऐतिहासिक किरदार हैं जिन्होंने केवल अपने दम पर न केवल इतिहास रचा, बल्कि महिला सशक्तीकरण को भी एक नई दिशा दी। 12वीं सदी में कल्हण द्वारा लिखी गई महान पुस्तक (जिसे कश्मीर का इतिहास कहा गया) में भी दिद्दा का उल्लेख है। बेशक कई स्थानों पर उनके पूरे चरित्र, उनके परिवेश और एक महिला के रूप में उनकी कमजोरियों का भी जिक्र मिलता है। लेकिन यह कोई नहीं कहता कि वे एक योद्धा या वीरांगना नहीं थीं।

सागर साहब 2003-2005 और 2009 से 2011 तक रेडियो पुंछ में मुख्य अधिकारी रहे। यहाँ रहते हुए उनके पास पर्याप्त समय होता। लिहाजा वह राजतरंगिनी में वर्णित स्थानों की खोज करने निकल जाते। पुंछ में रहते हुए ही उन्हें यह जानकारी मिलती है कि रानी दिद्दा का पैतृक राज्य लोहर था। वह वहाँ की अनेक यात्राएँ करते हैं। सागर साहब ने अनेक बार राजतरंगिनी का भी अध्ययन किया। अपनी भूमिका में वह लिखते हैं, "अपनी शासन प्रणाली से यह रानी बड़ी बुद्धिमान, योग्य एवं साहसी प्रतीत होती है, परंतु कई विद्वानों ने इसे विवादास्पद लिखा है। कुछ ने केथरीन ऑफ रशिया (निर्दयी) और कुछ ने विस्मयकारी चरित्र बताया है।"

बहरहाल सागर साहब ने दिद्दा रानी को ऐतिहासिक नाटक लिखने का मूल स्रोत बनाया। इस नाटक में दिद्दा जैसी पहले दृश्य में हैं, वैसी ही अंतिम दृश्य में नजर आती हैं। लोहर नरेश सिंहराज की पुत्री दिद्दा का क्षेमगुप्त से विवाह होता है। इसके बाद दिद्दा के हर पति की मृत्यु होती रहती है। शासन की बागडोर दिद्दा के ही हाथ में रहती है। अपने बेटों-पोतों को वह उत्तराधिकारी घोषित करती है, लेकिन उनके वयस्क होने तक शासन अपने हाथ में रखती है।

दिद्दा 1000 साल से भी अधिक समय की एक ऐसी महिला किरदार रहीं जिन्होंने राजनीतिक जीवन के भीतर की त्रासदियों और चुनौतियों का सामना किया। दिद्दा शारीरिक रूप से कमजोर और परिवार से उपेक्षित थीं। बावजूद इसके उन्होंने कश्मीर का शासन सँभाला।

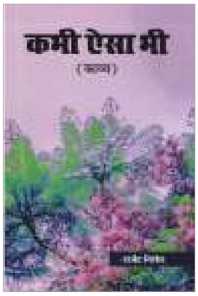

कभी ऐसा भी

राजेंद्र निशेश

यह कवि राजेंद्र कुमार सभरवाल का काव्य-संग्रह है, जिसमें विविध विषयों पर आधारित 90 कविताएँ शामिल हैं। कवि ने मनुष्य के अंतर्मन को, विचारों, भावों, रिश्ते-नाते और उसके सफरनामे के साथ-साथ प्रकृति की जीवंत छवि को अपनी कविताओं में उकेरा है।

समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

पृ. 112; रु. 150.00

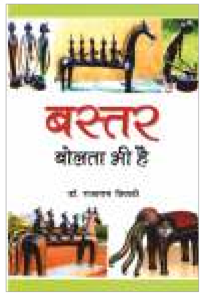

बस्तर बोलता भी है

डॉ. राजाराम त्रिपाठी

घने जंगलों से पटे, आदिवासी संस्कृति से सुसज्जित छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक राजधानी बस्तर के जीवन को कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का कार्य इस पुस्तक में किया गया है। कवि ने वहाँ की संस्कृति, परंपरा और जनजातीय पीड़ा को गहराई और तन्मयता से अनुभव कर इसकी रचना की है, जो दो खंडों में विभाजित है और उनमें कुल मिलाकर 45 कविताएँ हैं।

लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 70; रु. 200.00

रंगों में रंग... प्रेम रंग

मोहन सपरा

यह मशहूर कवि मोहन सपरा का 'प्रेम' विषय पर रचित काव्य-संग्रह है। प्रेम की व्याख्या असीम है। कवि ने इस प्रेम भाव को विविध रूपों में समझने, उसका अनुभव करने तथा इसे अपने जीवन में उतारने के लिए कविताओं की रचना की है। इसमें प्रेम भाव से जुड़ी 37 कविताएँ संगृहीत हैं।

आस्था प्रकाशन, जालंधर, पंजाब।

पृ.102; रु.195.00 (पेपरबैक), रु.295.00 (सजिल्द)

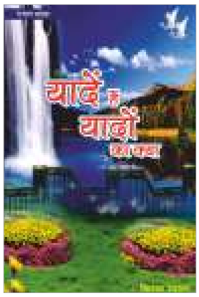

यादें हैं यादों का क्या

किशन स्वरूप

यह ग़ज़लकार किशन स्वरूप का ग़ज़ल-संग्रह है, जिसमें कुल 95 ग़ज़लें हैं। इनके ज़रिये कवि ने जीवन के महत्व को समझाते हुए मनुष्य को कठिनाइयों से टक्कर लेने, हार से प्रेरणा लेने, बिना रुके-ठहरे हमेशा प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है।

उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।

पृ. 104; रु. 150.00

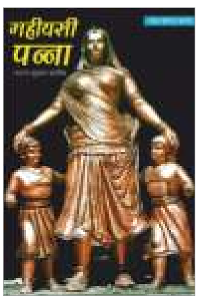

महीयसी पन्ना

तरुण कुमार दाधीच

इतिहास में त्याग की देवी पन्ना धाय का नाम हर कोई जानता है, जिन्होंने राजकुमार उदयसिंह की रक्षा करने के लिए अपने पुत्र का बलिदान कर दिया। कवि ने अपने इस बाल खंड काव्य में महीयसी पन्ना की ममता, वीरता और गौरव को सरसी छंद में लिखा है, जिसमें मंगलाचरण सहित 216 पदों को खंड काव्य के नियमानुसार सात खंडों में विभक्त किया गया है।

अनुपम पब्लिकेशन, उदयपुर, राजस्थान।

पृ. 64; रु. 90.00

मेरी धड़कन मेरा चिंतन

डॉ. ईश्वर सिंह

यह पुस्तक 40 कविताओं का संकलन है जो छह खंडों—मेरी आस्था, मेरी माटी, मेरी धड़कन, मेरा दर्शन, सफर सबका, मुक्तक में विभक्त है। सभी कविताएँ अंतर्वस्तु, संप्रेषणीयता और यथार्थ के ताने-बाने में पिरोई गई हैं। इनमें वैयक्तिक और सामाजिक अनुभूति की संतुलित साझेदारी है।

यात्री प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 136; रु. 250.00

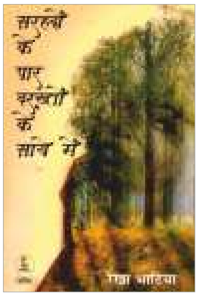

सरहदों के पार दरख्तों के साये में

रेखा भाटिया

इस कविता संग्रह की कविताएँ जीवन के यथार्थ से परिचय कराती हैं। इसकी 71 कविताओं ने स्त्री-मन के अनेक पहलुओं को छुआ है। इसमें देश के लिए शहीदों के परिवारों की व्यथा, बेटियों का महत्व, रिश्तों की कोमलता, प्रकृति की महत्ता, देशप्रेम आदि अनेक विषयों पर कविताओं को गढ़ा गया है।

शिवना पेपरबैक्स, सीहोर, मध्य प्रदेश।

पृ. 144; रु. 250.00

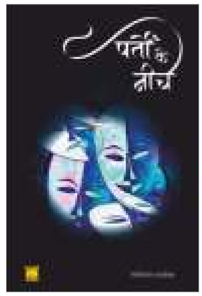

पत्तों के नीचे

नंदकिशोर बावनिया

यह पुस्तक 25 कहानियों का एक संग्रह है। इसमें अधिकांश कहानियाँ जैसे—स्वामी जी, बुआ जी, अन्नी, लल्ली, कल्याणी, रानी, नंदिनी, मारिया मूलतः व्यक्ति केंद्रित हैं। जीवन अनुभव तथा घटनाओं पर आधारित ये कहानियाँ जहाँ एक तरफ संबंधों के महत्व को उजागर करती हैं, वहीं समाज के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं।

भोज शोध संस्थान, धार, मध्य प्रदेश।

पृ. 112; रु. 150.00

स्टॉक मार्केट में सफलता के सूत्र

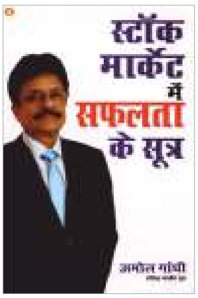

अमोल गांधी

इस पुस्तक में लेखक ने शेयर मार्केट में अपने अनुभवों के आधार पर नए निवेशकों की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया है। इसमें शेयर बाजार की प्रारंभिक जानकारी के साथ-साथ निवेश के स्वरूप, शेयर बाजार की बारीकियाँ, मूल्य आय अनुपात, आने वाले जोखिमों आदि पर भी विचार किया गया है।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 128; रु. 150.00

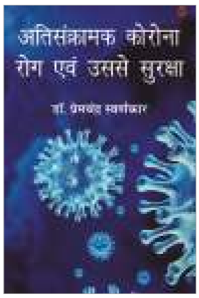

अतिसंक्रामक कोरोना रोग एवं उससे सुरक्षा

डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार

वैश्विक महामारी कोरोना से संबंधित यह पुस्तक कोरोना के स्वरूप, स्वभाव, विस्तार, जटिलताओं, बचाव तथा इलाज विषयक विभिन्न जानकारियों हेतु उपयोगी है। पुस्तक कोरोना रोगियों की कहानियों तथा बीमारी के दौरान उनके अनुभवों को भी साझा करती है। रोग से संबंधित नवीन खोजों तथा पारिभाषिक शब्दों का विवरण भी इसमें प्राप्त होता है।

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 198; रु. 300.00

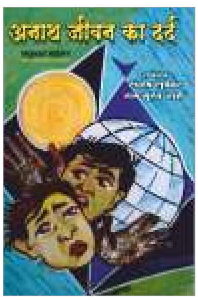

अनाथ जीवन का दर्द

संपादक : **संतोष सुपेकर, राम मूरत 'राही'**

अनाथ जीवन अपने आप में एक ऐसा दर्द है, एक ऐसा अभाव है जिसकी पूर्ति लगभग असंभव है। प्रस्तुत पुस्तक में संवेदनाएँ सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। 41 लघुकथाओं के इस संकलन में अनाथ जीवन के नितांत अछूते, अनाघ्रात पहलुओं पर प्रकाश डालकर संवेदना के चरम बिंदु तक पहुँचने की सफल कोशिश की गई है।

राघव प्रकाशन, इंदौर, मध्य प्रदेश।

पृ. 112; रु. 200.00

देख इधर भी ज़रा ज़िंदगी

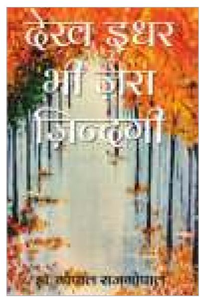

डॉ. गोपाल राजगोपाल

प्रस्तुत में 80 गजलें संगृहीत हैं, जिनमें जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों, सामाजिक सरोकारों और दुनिया की बदलती तस्वीरों को शायरी के माध्यम से कलमबद्ध किया गया है। इसमें नफ़रत और धार्मिक उन्मादों का जहर भरने वालों के प्रति चिंता व्यक्त की गई है।

इविंसपब पब्लिशिंग, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

पृ. 82; रु. 199.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में 'हिंदी पखवाड़ा' का आयोजन

"दुनिया में भारत ही एकमात्र देश है, जिसमें मातृभाषा की उन्नति के लिए उत्सव मनाया जाता है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम अपनी भाषा को अशुद्ध न करें। हमें अपनी भाषा को सँभालना है।" उक्त वक्तव्य प्रख्यात कमेंटेटर श्री सुशील दोषी ने हिंदी पखवाड़ा के उद्घाटन सत्र में व्यक्त किए।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत स्वायत्त संस्थान में दिनांक 01 से 15 सितंबर, 2021 तक 'हिंदी पखवाड़ा' का आयोजन किया गया। इस दौरान तीन प्रतियोगिताएँ और हिंदी व्याख्यान आयोजित किए गए। 'हिंदी दिवस' के उपलक्ष्य में आयोजित 'राष्ट्रीय प्रगति में राजभाषा हिंदी की महत्ता' विषय पर व्याख्यान में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति व केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय ने कहा, "भारत बहुभाषी देश है। इसका उल्लेख वेद में भी किया गया है। महाभारत में वेदव्यास ने कहा है कि 'किसी देश को संचालित करने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है।'" उन्होंने आगे कहा कि हम अंग्रेजी को भी सहायक के रूप में रख सकते हैं। विदेशी भाषा कभी किसी देश के विकास में सहायक नहीं। किसी भी दूसरे देश की भाषा किसी अन्य देश में जनमानस से नहीं जुड़ती। इसलिए मातृभाषा की उन्नति के लिए प्रयास करना चाहिए, क्योंकि इससे आचरण और व्यक्तित्व की उन्नति होती है और कर्तव्य को समझने के लिए भाषा की समझ आवश्यक है। हिंदी लिखने, पढ़ने और व्यवहार में लाएँ तो यह अन्य भाषाओं से सरल है।

इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि प्रबुद्ध वर्ग के ज्ञानवान होने पर भी निचले स्तर तक ज्ञान का प्रसार इसलिए नहीं हो पाया, क्योंकि मातृभाषा संपर्क की भाषा नहीं रही। अतः अधिक-से-अधिक हिंदी के प्रयोग पर जोर देना चाहिए।

कार्यक्रम में न्यास की मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने गृह मंत्रालय द्वारा जारी की गई राजभाषा शपथ सभी कर्मचारियों को ग्रहण करवाई। इस अवसर पर न्यास के राजभाषा अधिकारी एवं उपनिदेशक, श्री राकेश कुमार ने उपस्थित अतिथिगणों व न्यासकर्मियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

'हिंदी पखवाड़ा' में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेता

➔ सामान्य हिंदी ज्ञान प्रश्नोत्तरी (06 सितंबर, 2021) के विजेता

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम पुरस्कार	श्रीमती नवजोत कौर	श्री प्रवीन कुमार
द्वितीय पुरस्कार	श्री ब्रतिन डे	श्रीमती अरुणा देवी
तृतीय पुरस्कार	श्री पी. मोहन	सुश्री श्वेता कुमारी, श्रीमती अंजु रानी, श्री आकाश, श्री प्रवेश कुमार
सांत्वना पुरस्कार	–	श्रीमती कांति बिष्ट

➔ टिप्पण एवं प्रारूपण प्रतियोगिता (07 सितंबर, 2021) के विजेता

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम पुरस्कार	श्री नितीश कुमार	श्री सुदर्शन लाल
द्वितीय पुरस्कार	–	श्री मुकेश कुमार पंवार
तृतीय पुरस्कार	–	श्री मणि भूषण
सांत्वना पुरस्कार	–	मो. महफूज आलम, श्री ओमवीर, श्री रविंद्र रामकृष्णराव

➔ निबंध लेखन प्रतियोगिता (08 सितंबर, 2021) के विजेता

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम पुरस्कार	श्री मनोज कुमार पांडेय	श्रीमती एकता
द्वितीय पुरस्कार	–	श्रीमती पूनम मधुकर
तृतीय पुरस्कार	–	श्री अविनाश आनंद
सांत्वना पुरस्कार	–	श्री सूर्यकांत प्रभाकर

लखनऊ विश्वविद्यालय मेट्रो स्टेशन में पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र स्थापित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा लखनऊ विश्वविद्यालय मेट्रो स्टेशन में पुस्तक प्रोन्नयन केंद्र की स्थापना की गई, जिसका औपचारिक उद्घाटन डॉ. सतीश चंद्र द्विवेदी, माननीय राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) बेसिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश ने 06 सितंबर, 2021 को किया। इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा व निदेशक श्री युवराज मलिक, श्री बिजय कुमार मौर्य, एडीजी, उत्तर प्रदेश पुलिस; डॉ. अनिता भटनागर जैन, आईएएस (सेवानिवृत्त), श्री कुमार केशव, प्रबंध निदेशक, यूपीएमआरसी उपस्थित रहे।

श्री सतीश चंद्र द्विवेदी ने कहा कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की इस पहल से उत्तर प्रदेश की जनता को, विशेष रूप से युवा पाठकों को सुविधा मिलेगी। प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने कहा कि एक नए भारत के विचार को आकार देने के लिए हमें युवाओं की बौद्धिक क्षमताओं पर काम करना चाहिए। इसलिए यह प्रोन्नयन केंद्र पुस्तकों और अन्य पठन सामग्री का विशाल संग्रह प्रदान करके पठन-पाठन परंपरा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस अवसर पर न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने लखनऊ की जनता को बधाई दी और पहल का समर्थन करने और पुस्तकों को बढ़ावा देने के लिए यूपीएमआरसी को धन्यवाद भी दिया। उन्होंने युवा लेखकों के लिए प्रधानमंत्री की मेंटरशिप योजना के बारे में भी बताया और कहा कि यह योजना युवा और आगामी लेखकों के लिए फायदेमंद साबित होगी।

'देवधरा हिमाचल प्रदेश' पुस्तक का विमोचन

'देवधरा हिमाचल प्रदेश' पुस्तक प्रदेश ही नहीं, देश के लिए भी उपयोगी संदर्भ है : श्री राजेंद्र विश्वनाथ अर्लेकर

"अच्छी पुस्तकें पढ़ना जरूरी है और यह एक अभियान बनना चाहिए। किसी घर में रखी पुस्तकें-पत्रिकाएँ नई पीढ़ी के चरित्र निर्माण में सहायक होती हैं। क्यों न हम सभी महीने में एक बार किसी विद्यालय में जाकर लोगों को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करें।" उक्त उद्गार हिमाचल प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री राजेंद्र विश्वनाथ अर्लेकर ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित 'देवधरा हिमाचल प्रदेश' पुस्तक विमोचन के दौरान व्यक्त किए। मुख्य अतिथि की आसंदी से संबोधित करते हुए माननीय राज्यपाल ने कहा कि यह पुस्तक न केवल राज्य के लोगों के लिए, बल्कि राज्य में विभिन्न प्रयोजन से आने वाले लोगों के लिए भी एक त्वरित संदर्भ पुस्तिका है। उन्होंने पुस्तक लोकार्पण को एक मणिकांचन योग निरूपित किया, क्योंकि यह देश की स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव, हिमाचल प्रदेश की स्थापना का स्वर्ण महोत्सव का युग्म है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने अपने उद्बोधन में बताया कि किस तरह किसी किताब का विमोचन महज लेखक ही नहीं, बल्कि पाठक, प्रकाशक और आलोचक सभी के लिए आनंद का अवसर होता है। उन्होंने कहा कि पुस्तकों का संसार ही अलग होता है। ये मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक होती हैं। पुस्तकें विचारों के विकल्प प्रस्तुत करती हैं, प्रजातांत्रिक समाज सदैव विकल्पों की तलाश में रहता है और पुस्तकें विकल्पों की पूर्ति करती हैं। इस अवसर पर न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने सभी अतिथियों का आभार प्रकट करते हुए कहा कि इस किताब की खूबसूरती इसकी सरलता है और इसे किसी भी आम आदमी को समझने में सहजता होगी। पिछले 65 वर्षों से न्यास 50 से अधिक भाषाओं में देश के हर आयु वर्ग के लिए उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित कर देश के नॉलेज पार्टनर के रूप में अपनी भूमिका निभाता रहा है। आने वाले समय में अन्य प्रदेशों से जुड़ी पुस्तकें भी प्रकाशित की जाएँगी, ताकि प्रदेशों से जुड़ी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जानकारियों से पाठक भली-भाँति परिचित हो सकें।

हिमाचल प्रदेश के मुख्य सचिव श्री राम सुभग सिंह ने कहा कि यदि किसी पुस्तक का प्रकाशन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से हो रहा है तो यह उसकी सार्थकता और सामयिकता का प्रमाण है। पुस्तक की लेखिका डॉ. रचना गुप्ता ने इसकी सृजन यात्रा पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गत 20 वर्षों के पत्रकारिता जीवन में उन्होंने महसूस किया कि हर दिन खबरों की खाई से कुछ नया निकलता है, लेकिन अगले दिन वह गुम हो जाता है। उन्होंने अपने ऐसे ही अनुभवों को पुस्तक के रूप में ढालने का प्रयास किया है। इस पुस्तक में मानवीय सभ्यता के उद्भव काल और विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उसके विकास से लेकर आज के हिमाचल प्रदेश के विकासक्रम का एक प्रतिनिधिक परिचय देने का सचेत उपक्रम किया गया है।

कार्यक्रम का संचालन न्यास की पंजाबी भाषा की संपादक श्रीमती नवजोत कौर ने किया।

‘हिमनद : मानव जीवन का आधार’ पुस्तक विमोचित

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिमालय अध्ययन केंद्र; हेस्को संस्था, देहरादून और देहरादून हिमालयीय विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन ‘बियॉन्ड हिमालय’ में पूर्व शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल निशंक द्वारा लिखित और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित पुस्तक ‘हिमनद : मानव जीवन का आधार’ पुस्तक का विमोचन किया गया। इस अवसर पर श्री निशंक ने कहा, “हिमालय को समझना पड़ेगा, हिमालय के बगैर भारतीय उपमहाद्वीप की कल्पना करना संभव नहीं है। हिमालय का समाजशास्त्र और विज्ञान दोनों रूपों में अध्ययन की आवश्यकता है। यह भारत का मुकुट और प्रहरी है। अगर हिमनद बचे रहे तो हमारा अस्तित्व भी बचा रहेगा।”

ब्रिटेन के पूर्व राज्य मंत्री का न्यास आगमन

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री श्री बोरिस जॉनसन के भाई, सांसद और पूर्व राज्य मंत्री (विश्वविद्यालय, विज्ञान, अनुसंधान और नवाचार) श्री जो जॉनसन का राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के दिल्ली स्थित मुख्यालय में पदार्पण हुआ। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने शिष्टाचार भेंट करते हुए श्री जो जॉनसन को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की गतिविधियों और कार्यकलापों के संबंध में जानकारी दी। श्री जॉनसन ने पुस्तक विक्रय केंद्र और राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र के पुस्तकालय का अवलोकन किया और न्यास के विश्वस्तरीय पुस्तक प्रकाशन की प्रशंसा की।

पाठकीय प्रतिक्रिया

‘पुस्तक संस्कृति’ के जुलाई-अगस्त अंक में न्यास-अध्यक्ष आदरणीय प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा जी का संपादकीय पढ़ा। नेता जी के बारे में जो विवेचन दिया गया, वह शानदार है। गांधी जी और नेता जी के रिश्ते में माधुर्य था। नेता जी ने गांधी जी को पहली बार ‘राष्ट्रपिता’ कहा था। यहाँ तक कि जर्मनी से पनडुब्बी से जापान पहुँचने पर जब नेता जी पनडुब्बी के कप्तान से विदा लेते हैं तो कहते हैं कि “अब हम गांधी के देश में मिलेंगे।” उन्होंने आजाद हिंद फौज की पहली ब्रिगेड का नाम ‘गांधी ब्रिगेड’ रखा। वास्तव में हम अपने हीरो—गांधी और नेता जी की छवि से अनभिज्ञ हैं। निश्चित रूप से दोनों ही विभूतियों का व्यक्तित्व बहुत विशाल था। शानदार संपादकीय के लिए बहुत-बहुत बधाई!

—**डॉ. लक्ष्मी नारायण मित्तल**, मुरैना

पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित होना स्वाभाविक है। कोरोना काल में तो यह एक चुनौती बन गया है। ऐसे में यदि कोई पत्रिका लगातार छपे और उसका संपादकीय बहुत ही अनुभवशाली, प्रभावशाली और कर्मयोगी व्यक्तित्व लिखे और उस पर भी विषय महावीर महानायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर हो तो क्या ही कहने! राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की द्विमासिक पत्रिका ‘पुस्तक संस्कृति’ का जुलाई-अगस्त अंक नेता जी ‘सुभाष चंद्र बोस विशेषांक’ प्रकाशित हुआ। न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने संपादकीय में विचारोत्तेजक चिंतन की बात स्पष्ट की है। उन्होंने नेताजी सुभाष चंद्र बोस का स्पष्ट और खरा-खरा आकलन किया है। एक ओर जहाँ सुभाष चंद्र बोस की गांधी जी के प्रति निष्ठा का उदाहरण दिया है वहीं देश की स्वतंत्रता को शीघ्र प्राप्त करने हेतु सन् 1933 में गांधी जी द्वारा आत्मशुद्धि के लिए किए गए उपवास के दौरान, विट्ठल भाई के साथ वियना में संयुक्त वक्तव्य देते हुए गांधी जी को असफल राजनीतिज्ञ कहने का साहस भी किया। बहुत सारगर्भित संक्षिप्त-सधे हुए शब्दों से यह संपादकीय नेताजी सुभाष चंद्र बोस की समग्र छवि को उजागर करते हुए समाप्त हुआ है। मोहन शर्मा का नेता जी से संबंधित डिजिटल प्लेटफॉर्म, चित्र सहित अपने उद्देश्य में सफल कहा जा सकता है, क्योंकि आज के पाठक को संक्षिप्त और सारगर्भित जानकारी ही अभीष्ट है। न्यास की नई पुस्तकें व अन्य कुछ प्रकाशकों की पुस्तकों की समीक्षा बहुत ही दर्शनीय बन पड़ी है, इसके लिए संपादक पंकज चतुर्वेदी जी बधाई के पात्र हैं।

—**सूर्य कांत शर्मा**, नई दिल्ली

विश्व पुस्तक मेला 2022 प्रगति मैदान में

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

पुस्तकों के महाकुंभ का आयोजन प्रगति मैदान, नई दिल्ली में कर रहा है।

पिछले दो वर्षों से कोरोना महामारी की विभीषिका के कारण विश्व पुस्तक मेला का 29वाँ संस्करण वर्चुअल रूप से आयोजित किया गया, जिसमें पाठकों ने उतनी ही रुचि दिखाई, जितनी प्रगति मैदान में दिखाई देती है। हर्ष का विषय यह है कि पाठक, लेखक, प्रकाशक एक बार फिर एक साथ-एक स्थान पर उपस्थित होंगे।

इस संस्करण का अतिथि देश **फ्रांस** है।

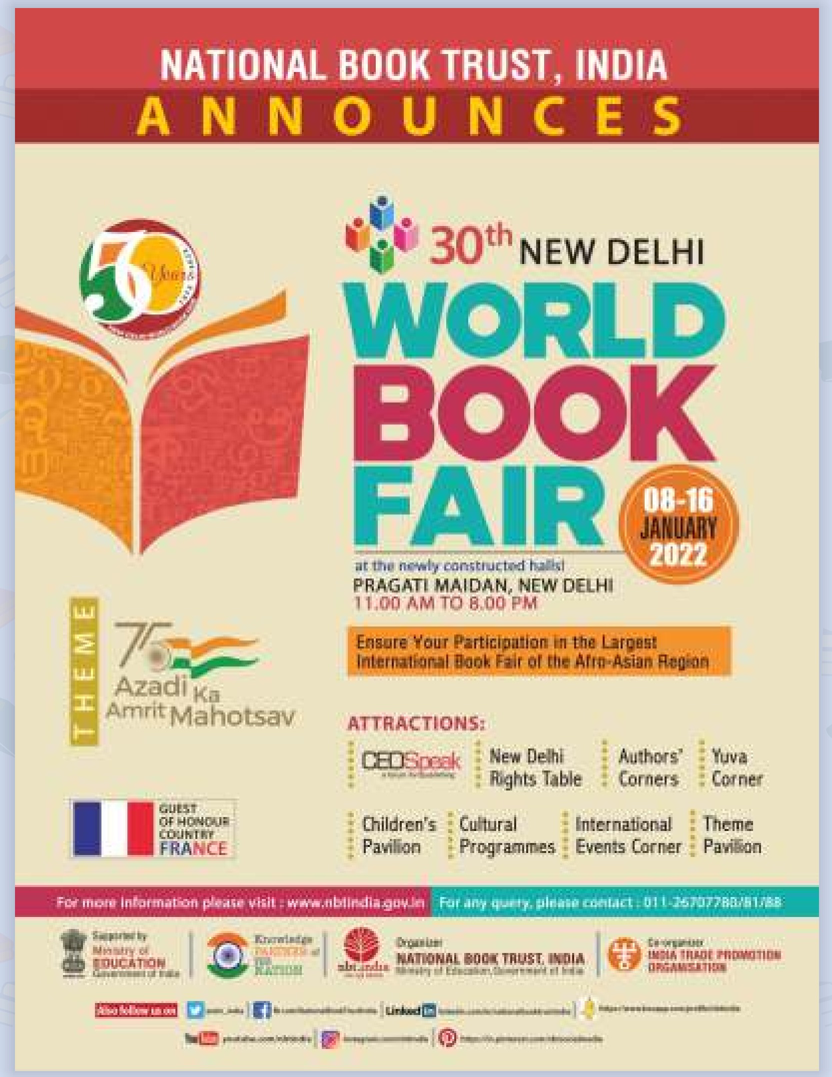

विश्व पुस्तक मेला के **30वें संस्करण** का मुख्य विषय **'आजादी का अमृत महोत्सव'** है।

यह आयोजन **08 जनवरी से 16 जनवरी, 2022** तक आयोजित किया जाएगा। ध्यातव्य है कि अगले वर्ष भारत के आजादी के 75 वर्ष पूरे हो रहे हैं। इसी उपलक्ष्य में केंद्रीय विषय का चुनाव किया गया है।

हर बार की तरह इस बार भी साहित्यिक गतिविधियाँ, पुस्तक विमोचन, पैनल चर्चा, थीम-आधारित संगीतमय प्रस्तुति, संगोष्ठियाँ, नुक्कड़ नाटक, लघुनाटिका आदि आयोजित किए जाएँगे।

इस महती कार्य में इंडिया ट्रेड प्रमोशन ऑर्गनाइजेशन (आईटीपीओ) सह-संयोजक के रूप में अपनी भूमिका निभाएगा।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

जुजुराना : पक्षियों का राजा

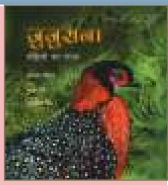

अनिता चौहान

अनुवाद : **कुसुमलता सिंह**

यह पुस्तक कुफरी नेचर पार्क, शिमला, हिमाचल प्रदेश की सैर कराती है जो हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले पक्षियों और स्तनपायी जानवरों का घर है। उन्हीं में से एक पक्षी है 'जुजुराना', जिसका अर्थ होता है 'पक्षियों का राजा'। यह पुस्तक रोमांचक यात्रा-वृत्तांत के साथ-साथ पक्षियों के आवास, उनके भोजन आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मुहैया कराती है।

पृ. 40; रु. 105.00

किसानी जीवन की पंजाबी कहानी

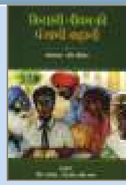

संपादक : **रवि रविंदर**

अनुवाद : **प्रीत अरोड़ा, नवजोत कौर मान**

यह पुस्तक पंजाब में किसानों के जीवन से जुड़ी 31 कहानियों का संग्रह है। जीवन के यथार्थ को दर्शाती ये कहानियाँ किसानों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक दशा-दिशा को प्रदर्शित करती हैं। यह किसानी जीवन तथा इसकी पृष्ठभूमि में विद्यमान शक्ति संबंधों को समझने में सहायता प्रदान करती है।

पृ. 482; रु. 510.00

दिविक रमेश चुनिंदा नाटक

दिविक रमेश

चित्र : **इरशाद कप्तान**

यह पुस्तक 10 से 12 वर्ष के बच्चों के लिए पाँच प्रेरणादायी नाटकों का संग्रह है। इन नाटकों में शिक्षा के महत्व, जागरूकता, मनुष्य द्वारा प्रकृति को पहुँचाई जा रही हानि, जानवरों पर मनुष्य की क्रूरता, अंधविश्वास, पेड़-पौधों का महत्व आदि विषयों को रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 64; रु. 110.00

चौथा मित्र

मनोज दास

चित्र : **शिशिर दत्ता**

अनुवाद : **संध्या तिवारी**

मूलतः उड़िया भाषा में लिखित यह उपन्यास तीन मित्रों की कहानी है। एक रोमांचक घटना में इन मित्रों की मुलाकात एक बाघ यानी अपने चौथे मित्र से हो जाती है। यह पुस्तक जानवरों के प्रति बच्चों के सहज प्रेम को प्रदर्शित करने के साथ-साथ उनके प्रति अच्छे व्यवहार की भी सीख देती है।

पृ. 50; रु. 60.00

भारत में जनसंख्या स्थिरीकरण की तलाश

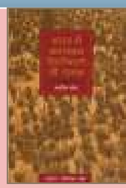

आशीष बोस

अनुवाद : **हरिशंकर राढ़ी**

यह पुस्तक स्वतंत्रता के बाद भारत में जनसंख्या नीति के विकास-क्रम को प्रदर्शित करती है। पुस्तक अनेक प्रासंगिक प्रतिवेदनों तथा अप्रकाशित दस्तावेजों की पड़ताल का परिणाम है। यह भारत में जनसंख्या तथा विकास के महत्वपूर्ण मुद्दों के साथ-साथ भारत में जनसांख्यिकीय आँकड़ों के विस्तारीकरण तथा जनसंख्या शोध की समस्याओं पर भी चर्चा करती है।

पृ. 208; रु. 240.00

देवधरा हिमाचल प्रदेश

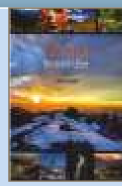

रचना गुप्ता

यह पुस्तक 10 अध्यायों में विभक्त है। पुस्तक में हिमाचल के अतीत, राज्य की रचना, समृद्धि, पर्यटन के विकास, ज्ञान और प्रगति के सोपान, सड़कों के सफर, प्रमुख संस्थाओं, ऊर्जा और प्रकृति के उपहार वनों का विस्तृत विश्लेषण है।

पृ. 152; रु. 220.00

बिहार

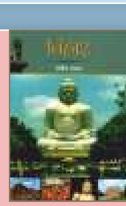

मनीष रंजन

प्रस्तुत पुस्तक में वर्तमान बिहार प्रांत के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। पाठक पुस्तक से राज्य के इतिहास, संस्कृति और राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार की भूमिका के सम्यक अध्ययन के साथ-साथ वहाँ की राजनीतिक, भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

पृ. 486; रु. 510.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in